# ''साम्प्रदायिक प्रश्न और मतवाला''

(एम०फिल० उपाधि हेतु लघु शोध–प्रबंध)

*शोध-निर्देशक*
डा० वीर भारत तलवार

*शोधकर्ता*
लालचंद राम

**भारतीय भाषा केन्द्र**
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110 067
1997

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
**JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY**
NEW DELHI - 110067

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान

दिनांक : 21 जुलाई 1997

# *प्रमाण-पत्र*

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री लालचन्द राम** द्वारा प्रस्तुत **"साम्प्रदायिक प्रश्न और मतवाला"** शीर्षक लघु शोध–प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह लघु शोध–प्रबंध श्री लालचंद राम की मौलिक कृति है।

**प्रो० मैनेजर पाण्डेय**
(अध्यक्ष)
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – ११० ०६७

**डा० वीर भारत तलवार**
(शोध निर्देशक)
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – ११० ०६७

GRAM : JAYENU TEL.: 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN FAX : 91-011-6865886

# समर्पण

## श्री रामरतनजी को

*जिन्होने परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा दी*
*एवम्*
*मेरी कल्पना को साकार किया*

अमिय, गरल, शशि-शीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है ये 'मतवाला'

*— निराला*

# विषय-सूची


पृ० संख्या

भूमिका — क से च

अध्याय - एक — 01 - 35

"तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवम् राजनैतिक परिस्थितियाँ"

अध्याय - दो — 36 - 76

" साम्प्रदायिक समस्या एवं मतवाला"

(क) "साम्प्रदायिक प्रश्न पर सैद्धान्तिक और वैचारिक सामग्री"

(ख) "तत्कालीन दंगो "तबलीग" और "शुद्धि" आन्दोलन के बारे में "मतवाला" में रिपोर्टिंग"

अध्याय - तीन

- उपसंहार — 77 - 81

ग्रंथ-सूची — 82


.....

# भूमिका

"मतवाला" के अध्ययन से हम इतिहास की ऐसी सुरंग से निकलते हैं जिसमें हमें देश के निकटतम अतीत का जीवित साक्ष्य दिखाई पड़ता है - ऐसा साक्ष्य जो हमें अपने समय में आत्ममंथन को प्रेरित करता है। आज जब दुनिया में समय-समाज को जानने के लिए इतिहास की सुदूर यात्रा की जा रही हो वहाँ ऐसे निकटतम अतीत॥मतवाला॥ की जाँच पड़ताल आवश्यक हो जाता है। पत्रकारिता का सच अवश्य तात्कालिक होता है। इसकी भूमिका आने वाले समय को समझने में बड़े काम की हो सकती है। इससे हम इतिहास की सच्चाइयाँ ही नहीं, अपने समय-निर्माण में सहूलियतें भी पाते हैं। हमारा समय मतवाला का भविष्य और "मतवाला" हमारे समय का अतीत। हमारे इस समय के निर्मित हुए सच के प्रमाण या पाखण्ड इसमें मिलते हैं। देश साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा है, ऐसे में मतवाला को साम्प्रदायिकता के परिप्रेक्ष्य में देखना समय की मांग के अनुरूप ही कहा जा सकता है।

बदलते हुए समय समाज में पत्रकारिता की क्या भूमिका होती है और क्या होनी चाहिए, इसे हम मतवाला के माध्यम से जान सकते हैं। मतवाला की जरूरत क्यों पड़ी ? क्या यह समय और परिस्थितियों की मांग थी? अगर ऐसा है तो यह कौन सी ऐसी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियां थी, जिसने मतवाला को जन्म दिया, मतवाला का उद्देश्य क्या था, वह किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निकला ? इसका अध्ययन हमने अध्याय एक में विस्तार से किया है।

अध्याय दो "साम्प्रदायिक समस्या और मतवाला" है। इसमें मतवाला साम्प्रदायिक समस्याओं को किस तरह उठाया है, किस प्रकार साम्प्रदायिक प्रश्नों से टकराया है, तथा साम्प्रदायिकता सम्बंधी उसकी राय क्या है? साम्प्रदायिक

समस्याओं को मतवाला तरजीह कितनी देता है ? इसका वर्णन, विवेचन हमने इस अध्याय में किया है । इसी अध्याय का खण्ड ।क। "साम्प्रदायिक प्रश्न पर सैद्धान्तिक और वैचारिक सामग्री " है इसमें सांप्रदायिक प्रश्नों का सैद्धान्तिक और वैचारिक आधार क्या रहा है ? इसका अध्ययन किया गया है । सांप्रदायिकता जैसी विचारधारा का जन्म सभ्यता के बचपन में नहीं बल्कि विकसित सभ्यता में होता है । जब शिक्षा का प्रभाव आम जनता पर पड़ता है, लोग सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से जागरूक हो जाते हैं और इसके महत्व को समझने लगते हैं तथा अपने अधिकारों की पहचान कर मांग करते हैं तब साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा का जन्म होता है । इसी अर्थ में साम्प्रदायिकता पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों की मानसिकता की उपज हो जाती है । क्योंकि हजारों सालों से हिन्दू-मुसलमान एक साथ रह रहे थे उनके साथ साम्प्रदायिकता का आधार क्यों नहीं बना ? क्या कारण है कि साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा का जन्म 20वीं शताब्दी में होता है?, उसका सैद्धान्तिक और वैचारिक आधार क्या था तथा मतवाला ने इन आधारों की बृद्धि अथवा उनको कम करने में क्या भूमिका निभायी ? इससे संबंधित विवेचन अध्याय दो खण्ड"क"में किया गया है ।

मतवाला का समय सांप्रदायिक दंगों का समय था । 1920 के दशक में जितने साम्प्रदायिक दंगे हुए, इतिहास में इतनी कम अवधि में इतने दंगे कभी नहीं हुए । इन साम्प्रदायिक दंगों के पीछे कौन से सिद्धान्त व विचार काम कर रहे थे तथा सांप्रदायिक दंगे किस मनोवृत्ति के परिणाम थे? सांप्रदायिक दंगों का सैद्धान्तिक व वैचारिक आधार क्या था । इसका विवेचन अध्याय दो खण्ड "ख" "तत्कालीन दंगों, तबलीग और शुद्धि आंदोलन के बारे में मतवाला में रिपोर्टिंग" में किया गया है । "तबलीग" और 'शुद्धि' आंदोलन का प्रभाव तत्कालीन दंगो पर पड़ता था या नहीं तबलीग और शुद्धि आंदोलन की जरूरत क्यों पड़ी ? कहीं ये

आंदोलन धर्म की आड़ में राजनीति प्रेरित तो नहीं थें।आखिर उसी समय हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग फिर सक्रिय क्यों हो गई ? तत्कालीन दंगों तथा 'शुद्धि' और "तबलीग" के बारे में मतवाला ने क्या रिपोर्टिंग की है। मतवाला की राय इन दंगों पर क्या है ? शुद्धि और संगठन तथा तबलीग और तंजीम पर मतवाला के विचार क्या हैं ? इसका विषद विवेचन इस अध्याय में किया गया है । हालाँकि इस लघु शोध-प्रबंध में एक अध्याय के रूप में मतवाला में प्रकाशित साम्प्रदायिक प्रश्न पर कलात्मक साहित्य ॥कविता, कहानी, नाटक॥ के अध्ययन की योजना बनाई गई थी लेकिन उससे सम्बंधित सामग्री मतवाला में नहीं होने के कारण वह अध्याय हटा दिया गया क्योंकि साम्प्रदायिकता सम्बंधी विषयों को कविता, कहानी, नाटक में नहीं उठाया गया है। मतवाला में साम्प्रदायिकता सम्बंधी लेखों की भरमार है जिनमें कुछ मुख्य लेखों की सूची प्रस्तुत कर रहा हूँ जो निम्न हैं ----

....कृ.प.उ.

## "मतवाला" में प्रकाशित साम्प्रदायिकता विषयक लेख"

01. जोगी जोगी लड़ै, खप्परों की हानि ।
"मतवाला" - 17.11.1923
ले.-आचार्य शिवपूजन सहाय

02. "दाढ़ी और चौटी का मेल"
"मतवाला"- 14.6.1924
ले.-आचार्य शिवपूजन सहाय

03. "की तनु प्राण कि केवल प्राना"
"मतवाला" - 27.9.1924
लेखक (?)

04. "मिले न कबहुँ सुमत रन गाढ़े"
"मतवाला" - 27.6.1925
लेखक (?)

05. "मुदाहाफिज"
"मतवाला"- 24.7.1926
लेखक (?)

06. "मेल"
"मतवाला"- 31.7.1926
लेखक (?)

07. "पानीपत"
"मतवाला" - 22.8.1925
लेखक (?)

08. "मुझे हँसने दो"
"मतवाला" - 3.9.1927
ले.- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"

09. "मेल का खेल"
"मतवाला" - 17.9.1927
ले.- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"

.....

तीसरा अध्याय उपसंहार है । यह मुख्यत: मेरे शोध का सार है ।

इस लघु शोध-प्रबंध के लिए मैं "नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी" के प्रबंधक डा0 सुधाकर पाण्डेय, पुस्तकालयाध्यक्ष डा. सभाजीत शुक्ल व स्टाफ के अन्य सदस्यों तथा "नेहरू मेमोरियल म्यूजियम व पुस्तकालय" तीन मूर्ति हाऊस दिल्ली के माइक्रोफिल्म रीडर से सम्बंधित स्टाफ का विशेष रूप से आभारी हूँ। जहाँ से मतवाला का संग्रह सुलभ हो सका । इस प्रक्रिया में यहाँ के सदस्यों ने जो सहयोग दिया उसके बिना यह कार्य असम्भव था ।

अपने माता-पिता तथा अग्रज श्री हरीराम का विशेष रूप से ऋणी हूँ, जिनके परिश्रम, त्याग व बलिदान ने मुझे यहाँ तक पहुँचाया, उनके प्रति आभार प्रकट करना मात्र औपचारिकता होगी । अनीता जी की प्रेरणा, उत्साह तथा समय-समय पर सहयोग व गीता की तपस्या तथा ट्रिवंकल के प्रति मोह व प्यार ने यह कार्य करने की दिशा तय की है अन्यथा यह मेरे जीवन में असंभव था । मित्रों, अग्रजों तथा संरक्षकों में मुख्य रूप से डा. फूलबदन, डा. महेन्द्र प्रताप राना, डा. एस. बी. प्रसाद, डा. सुशील कुमार, डा, शन्तानु कुमार दास और दलित शिक्षा आंदोलन के संचालक तथा समाज सुधारक सर्वश्री चंद्रभान प्रसाद को भूलना संभव नहीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय की राह दिखाई । उनके सहयोग और प्रेरणा से मुझे यह कार्य करने को मजबूर किया है । मित्र शिव कुमार सिंह, चन्द्रेश्वर तथा नामदेव का सहयोग अविस्मरणीय रहेगा । भारतीय विदेश सेवा में कार्यरत मेरे परम मित्र तथा रूम पार्टनर पुनीतराय कुण्डल तथा उनकी दोस्त अरून्धती विश्वास के प्रति आभार प्रकट करना औपचारिकता होगी, जिनके साथ रहकर मुझे हर क्षेत्र में प्रेरणा व सहयोग प्राप्त हुआ । निश्चित समय के अन्तर्गत काम करने के लिए

प्रेरणा व प्रोत्साहन देने वाले मित्रों में अरबिन्द, हरेन्द्र, प्रेम, गजानन, संजय गौतम, ईरशाद, सुजीत, चंद्रशेखर रावत, प्रवीण रावल, गुरू प्रसाद, सतसंगी, राम चन्दर, बजरंग बिहारी तिवारी, विनय कुमार वर्मा, विजयपाल, राजकुमार, दिनेश, भोला प्रसाद, लालचंद्र, राजकुमार गौतम, राजेश कुमार, "सुमन", जमील चरनजीत, संतोष कुमार पाण्डे, मि. मीना, पूनम, कंचन, बंटना, सुरेखा, मीना, अंजुला जैन, रंचना राम, सुषमा राय, मनीषा खटाना तथा हर्ष कालिया, सुशील कटारिया, बृजेश, पी. के. जैन व हरेन्द्र प्रताप सिंह, तथा ज. ने. वि. में कार्यरत श्री जयराम आदि प्रमुख हैं ।

अपने शोध-निर्देशक डा0 वीर भारत तलवार के प्रति आभार प्रकट करना औपचारिकता तथा परम्परा अनुपालन मात्र होगा । औपचारिकता में मैं विश्वास नहीं करता, इसलिए उनके मार्गदर्शन तथा असीम कृपा को शब्दों में अभिव्यक्त करना ठीक नहीं और न ही उनके प्रति अगाध श्रद्धा को प्रदर्शित करना आवश्यक समझता हूँ ।

— नागेश्वर

....0.....

# अध्याय- एक

## "तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवम् राजनैतिक परिस्थितियाँ"

## "तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ "

साम्प्रदायिकता अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा विश्वास के बल पर बलवती होती है । प्रसिद्ध विद्वान विलफ्रेड कॉंटवेल स्मिथ ने साम्प्रदायिकता को एक ऐसी विचारधारा के रूप में स्वीकृति दी है " जो प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के समूह के एक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक इकाई होने पर, यहाँ तक कि बैरभाव तक पर बल देती है ।"

दरअसल परिभाषाएं समझदारी में बाधाएं खड़ी करती हैं, उनमें जटिल अनुभवों को एक रूप करने की प्रवृत्ति होती है और इस तरह विविधता और गतिशीलता का अभाव हो जाता है । इसलिए कोई जरूरी नहीं कि साम्प्रदायिकता को परिभाषित किया ही जाय । परन्तु साम्प्रदायिकता को समझना नितान्त आवश्यक है । इसके मूल में कुछ ऐसे सवाल हैं जिनसे टकराये बिना साम्प्रदायिकता को समझ पाना मुश्किल है --- क्या साम्प्रदायिकता कोई घटना है या क्या इसमें समयानुकूल परिवर्तन हुआ है? क्या स्वतंत्रता पूर्व और वर्तमान साम्प्रदायिकता में कोई अंतर है? क्या साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति अपनी विशेष परिस्थितियों में भारत के विभिन्न प्रान्तों में एक जैसी है ? कहीं साम्प्रदायिकता की जड़ हमारे देश की संरचना में तो नहीं? हालांकि साम्प्रदायिकता की समस्या भारत के अलावा अन्य देशों में भी है लेकिन उसका जो स्वरूप यहाँ मिलता है कहीं और क्यों नहीं?

साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल निजी सम्बंधों व हितों से लेकर स्थानीय

संस्थागत, राष्ट्रीय राजनीति व साम्प्रदायिक दंगों तक होता है । साम्प्रदायिकता के दो मुद्दे दिखाई पड़ते हैं । - एक तो समाज में चेतना की स्थिति लाने के लिए दूसरा राजसत्ता पर कब्जा के लिए ।

कमोवेश समाज रचना के सभी स्तरों पर इसका उपयोग होता है । धर्म व्यक्ति को सामुदायिक या सामाजिक होने की पहचान देता है । विशेषकर राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा के लिए धर्म का दुरूपयोग ही साम्प्रदायिकता को जन्म देता है वरना सामाजिक व सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर पर साम्प्रदायिकता का उग्र रूप सामने नहीं आता । धार्मिक कट्टरता तब तक साम्प्रदायिकता का रूप धारण नहीं करती है जब तक कि इसमें पर-हित का भाव बना रहता है । परन्तु जब वह गुटबाजी, अन्य समूहों के प्रति ईर्ष्याभाव और धार्मिक उन्माद से ग्रस्त हो जाती है तो यह ओछी मानसिकता तत्कालीन परिस्थितियों के साथ जुड़कर नये-नये रूपों में व्यक्त होने लगती है। इसलिए साम्प्रदायिकता शून्य में उपजने वाली अमूर्त वस्तु नहीं बल्कि इसका ठोस सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आधार होता है । यही कारण है कि प्रत्येक देश में साम्प्रदायिकता के अलग-अलग रूप देखे जा सकते हैं ।

औपनिवेशिक सरकार " फूट डालो और शासन करो" की नीति पर आधारित थी । उसको जीवित रखने के लिए साम्प्रदायिकता जैसी जीवन औषधि का अत्यधिक महत्व था, जिसका अपने स्वास्थ्य के लिए उचित प्रयोग करना यह सरकार अच्छी तरह जान गयी थी । स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं का दामन साम्प्रदायिकता से बिल्कुल पाक-साफ हो ऐसा नहीं । प्रारम्भ में वे इसका खुले तौर पर विरोध करते रहे परन्तु इसकी प्रचण्ड शक्ति के सामने वे ज्यादा देर तक टिक नहीं सके, परिणामत: वह धीरे-धीरे साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा का शिकार होते चले गये । यद्यपि "मतवाला" का जीवनकाल

26 अगस्त 1923 ई. से लेकर 1929 तक लगभग छः -सात वर्ष की छोटी अवधि तक ही था, परन्तु इस लघु अवधि में उसने पत्र-पत्रकारिता के क्षेत्र में जो अपनी छवि कायम की वह आज भी बरकरार है । कारण स्पष्ट है कि अपने समय की नब्ज को पहचानने, सामयिक घटनाओं की वास्तविकता को उभारने, यथार्थ को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने और सबसे ज्यादा साम्प्रदायिकता के प्रश्नों से टकराने का महत्वपूर्ण काम किया । इसलिए 1920 के दशक की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ ही विशेषकर "मतवाला" के विचार बिन्दु का केन्द्र थी । अतः साम्प्रदायिकता और तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में 'मतवाला' की जाँच पड़ताल करना अति आवश्यक है ।

सामाजिक परिस्थिति :

"साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत एक ही धर्म के मानने वाले लोगों के सांसारिक। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक । हित समान होते हैं तथा किसी अन्य धर्म के मानने वाले लोगों के सांसारिक हित से भिन्न तथा परस्पर विरोधी होते हैं।"

– प्रो. विपिन चंद्र

भारत जैसे देश में यह संभव नहीं कि एक धर्म के मानने वालों के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक हित समान होते हों । उदाहरण के लिए उच्चवर्ग हिन्दू और निम्न वर्ग हिन्दू के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक हित एक हो ही नहीं सकते । ठीक यही स्थिति मुसलमानों में भी है उच्चवर्गीय सम्पन्न मुसलमान तथा निम्नवर्गीय मुसलमान के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक हित एक नहीं हो सकते । इन सभी क्षेत्रों में काफी विषमता है । इन्हीं

विषमता के कारण उपनिवेशवादी सरकार ने इसका प्रयोग अपनी शासन व्यवस्था को कायम रखने के लिए किया । विदेशी शासन के दौरान देश की अर्थव्यवस्था में अल्प विकास और आर्थिक ठहराव की स्थिति के परिणाम स्वरूप जनाक्रोश को कम करने के लिए सामाजिक विभाजन और वैमनस्य को बढ़ावा देना विदेशी सरकार का मुख्य उद्देश्य था, जिससे कि जन-उर्जा के सीधे टकराव से बचा जा सके । ब्रिटिश सरकार द्वारा सामाजिक सेवाओं की उपेक्षा और विकासपूर्ण सामग्रियों पर फिजूलखर्ची तथा निरंतर सरकारी खर्च में कटौती करते रहने से देश की अर्थव्यवस्था दिन व दिन बदतर होती जा रही थी । परिणाम स्वरूप निम्न मध्यवर्ग के लिए आर्थिक अवसर कम होने से उसकी आर्थिक स्थिति निरंतर बिगड़ रही थी । सेवा के अवसर के अभाव में पारम्परिक व्यवसाय टूटने लगे । अतः अपनी वर्ग स्थिति और उसकी पहचान को कायम रखने के लिए उनमें एक तरह का आक्रोश उभरता रहा जिसके फलस्वरूप भय और हिंसा का वातातरण निर्मित होने लगा । सारी परिस्थितियाँ मिलकर धार्मिक मामलों को भी अधिकाधिक हवा देने लगीं, जिसका भयानक परिणाम छोटी-छोटी बात को लेकर होने वाले साम्प्रदायिक दंगे थे । इस प्रकार आर्थिक लाचारी ने सामाजिक माहौल को विषाक्त करने में बड़ी भूमिका निभाई ।

भारतीय स्वाधीनता संघर्ष जहाँ एक ओर विदेशी शासन से मुक्ति का आग्रह था वहीं दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों, कुरीतियों और जड़ता के स्थान पर समतावादी एवं प्रगतिशील विचारधारा का आग्रह था । देश की स्वाधीनता के लिए एकता जितनी आवश्यक थी, अछूत समस्या लोगों को विभक्त कर उनकी संगठित शक्ति की उर्जा बर्बाद करने में उतनी ही खतरनाक थी। यह अछूत समस्या समाज के लिए ही नहीं बल्कि देश के लिए भी उतनी ही घातक थी अतः इसको नष्ट करने का प्रयास बुद्धिजीवी वर्ग में लागातार चल रहा था ।

इस अछूत समस्या के लिए यदि एक ओर दक्षिण भारत में लागातार आंदोलन चल रहे थे तो दूसरी तरफ "मतवाला" भी अपनी पूरी शक्ति से इसके उन्मूलन में लगा था। " भाइयों जड़ता छोड़ो। अपने महान धर्म की उदारता पर ध्यान दो। अपने बिछुड़े हुए भाइयों को गले लगा लो। जिन्हें तुम अछूत समझते रहे हो, वे तुम्हारी जाति देह के अंग हैं। यदि अपने शरीर को अविकल रहने देना चाहते हो तो उन्हें अपने से अलग न होने दो।"[1]

भारतीय समाज की जटिल विषमता, विभिन्न जातिगत संगठनों और आंदोलनों के माध्यम से समय-समय पर उभरती रही है। ये जातिगत आंदोलन जुझारू तो होते थे फिर भी उनमें कुछ न कुछ रूढ़िवादी तत्वों का भी समावेश हो जाया करता था। मद्रास की गैर ब्राह्मण जस्टिस पार्टी खुले-आम ब्रिटिश शासन का समर्थन करती थी जिसने अंग्रेजों की दृष्टि में उस प्रान्त में द्विशासन को सफल बनाया। महाराष्ट्र में भास्करराव जाधव की गैर ब्राह्मण जस्टिस पार्टी ने भी ऐसी भूमिका निभाने का प्रयास किया। इस पार्टी का रूख सदैव कांग्रेस विरोधी ही रहा क्योंकि इनका आरोप था कि कांग्रेस ब्राह्मणवादी पार्टी है। देखा जाय तो यह आरोप गलत नहीं था क्योंकि इस प्रकार की ब्राह्मणवादी विचारधारा के पोषक "मालवीय" और "तिलक" थे। इसी जाति-वादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था की पुष्टि " मतवाले की बहक" कालम से हुई है। एक तरफ मालवीय जी पर व्यंग्य का असर है कि उन्होंने एक ही कुएं में सब जाति के लोगों को पानी भरने का प्रस्ताव पास होने दिया। इसलिए उनकी बुद्धि सठिया गई है तो दूसरी ओर पुराने ख्याल के कूप मण्डूकों पर है। बल्कि एक तरह से समाज की विषमता का ही चित्रण है और कूप मण्डूकों पर

---

1. मतवाले का मत, संपादक- कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 66
   'मैं अजब औघी तुम्हारी खोपड़ी' - 19.04.1924

प्रहार है यथा --"शायद वृद्धावस्था के कारण श्रद्धेय मालवीय जी की बुद्धि सठिया गई है । इसी से उन्होंने एक ही कुएं में सब जाति के मनुष्यों को पानी भरने का प्रस्ताव पास होने दिया है । शिव! शिव! इस अंधेर का भी कहीं ठिकाना है ? जब धोबी, डोम, चमार, मेहतर और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि एक ही कूप से जल भरने लगेंगे तो हमारे पुराने खयाल के कूप मण्डूक कहाँ रहेंगे ।"[2]

सामंती व्यवस्था में सबसे अधिक शोषण स्त्रियों और अछूतों का होता रहा । इनमें स्त्रियाँ सर्वाधिक शोषण का शिकार हुई क्योंकि अछूत पुरूष केवल उच्च वर्ग के द्वारा ही उपेक्षित और शोषित रहे, परन्तु स्त्रियों पर इन दलित पुरूषों का भी शोषण जारी रहा, उच्च वर्ग में स्त्रियों की दशा शूद्रों से अच्छी नहीं थी । उनका सब जगह शोषण होता रहा । इस प्रकार तत्कालीन समाज का यह दोहरा शोषण "मतवाला" की गहरी चिंता का विषय बना । जैसे ---" वास्तव में जब तक हमारे देश की स्त्रियाँ पर्दे की कैद से निकल नहीं जायेगी, तब तक उनकी शारीरिक और मानसिक किसी प्रकार की भी उन्नति न होगी । घर की चहार दीवारी के अन्दर बैठकर, उसी छोटे से आँगन को विश्व समझते-समझते उनकी बुद्धि संकुचित हो गई है ।"[3]

नारी मुक्ति आंदोलन तत्कालीन बदलते समाज की प्रगतिशील विचारधारा का मुख्य पहलू था । अत: इस प्रगतिशील विचारधारा से संबंधित महत्त्वपूर्ण सवालों से मतवाला का रूबरू होना स्वाभाविक था । मतवाला केवल स्त्री मुक्ति की ही बात नहीं करता था, बल्कि वह पुरूषों के समक्ष स्त्रियों के

---

2. "मतवाला", पृ0 संख्या ।।, 9 सितम्बर 1923
3. "मतवाले का मत"- सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ076। अक्ल पर पर्दा। 30.6.1928

लिए भी अवसर की समानता और अधिकारों की बराबरी की बात करता है, जैसे --"सारा यूरोप इस बात को समझ गया है कि स्त्रियों को भी ईश्वर ने वही अधिकार दे रखा है जो पुरूषों को प्राप्त है । उन्होंने सिर झुकाकर अपने देश की स्त्रियों की यह उचित मांग स्वीकार कर ली है । हमारा विश्वास है कि भारत को भी अपनी स्त्रियों का स्वतंत्रता सम्बंधी अधिकार स्वीकार कर लेना पड़ेगा ।"[4]

"मतवाला" स्त्रियों की सामाजिक मुक्ति के साथ-साथ उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता की भी वकालत करता है । 1928 ई. में जबकि नारी स्वतंत्रता आंदोलन का वह रूप नहीं उभर सका था जो बाद के वर्षों में उभरा, फिर भी मतवाला की पंक्तियों को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि ये विचार 1920 के दशक के होंगे बल्कि उसका तेवर 1970 और 1980 के दशक का लगता है । जैसा कि मतवाला ने "अक्ल का पर्दा " शीर्षक द्वारा दर्शाया है :-
" वास्तव में वह दिन लद गये जब हम स्त्रियों को गाय और भैंस की तरह अपनी खास सम्पत्ति समझते थे और उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं समझते थे । उस समय हम यही समझते थे कि स्त्रियों की सृष्टि विधाता ने केवल हमारी सेवा के लिए की है और चुपचाप हमारी परिचर्या में जीवन बिता देना ही उनका कर्तव्य और धर्म है ।"[5]

स्त्री स्वाधीनता की पूर्ण वकालत "मतवाला" करता है । वह स्त्री को परम्परागत और रूढ़िवादी संकीर्ण दायित्वों की कारा से मुक्ति दिलाकर

---

4. मतवाले का मत -सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 74 ।अक्ल का पर्दा। 30.6.1928
5. वही वही पृ0 76-77 वही वही

व्यापक जन-जीवन में भागेदारी प्रदान करने की बात करता है । वह स्त्रियों को समाज, धर्म, देश सेवा और राजनीति में अधिकाधिक सक्रिय होने का प्रबल समर्थक है ---" अब वे संतान प्रसव करने वाली मशीने नहीं रहेंगी । जब उन्हें अपने स्वतंत्र अस्तित्व का ज्ञान अच्छी तरह से हो जायेगा तो वे उसके विकास की भी अवश्य चेष्टा करेंगी ।"[6]

नारी मुक्ति की सार्थकता नारी शिक्षा के बिना संभव नहीं । अत: "मतवाला" ने नारी शिक्षा का भी जोरदार समर्थन किया । इसके लिए उसने व्यावहारिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत किया है । यद्यपि इसमें नारी शिक्षा के समर्थन में गंभीर तर्क तो नहीं है फिर भी नारी शिक्षा और नारी जागरण को आगे बढ़ाने की मंशा साफ जाहिर है :--" देश का प्रत्येक नवयुवक स्त्री शिक्षा का पक्षपाती है और पढ़ी-लिखी बालिकाओं को ही अपनी जीवन संगिनी बनाने के लिए समुत्सुक है ।"[7]

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ आजादी के पूर्व से ही ब्राह्मणवादी व्यवस्था को बराबर चुनौती मिलने लगी थी । इस व्यवस्था को चुनौती देने में निम्न मध्यवर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । महाराष्ट्र के 'सत्य शोधक समाज' ने इस ब्राह्मण विरोधी स्वर को और अधिक ऊँचा किया । 1919-21 में सत्य-शोधक समाज के ग्रामीण आंदोलनकारियों ने सतारा जिले में जमींदार और महाजन विरोधी आंदोलन भी चलाया । 1920 ई. के मध्य दशक से केशवराज जेढ़े और दिनकरराव जवालकर ने एक गैर ब्राह्मण आन्दोलन का नेतृत्व किया । इसप्रकार

---

6. "मतवाले का मत" सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ077 ।अक्ल पर पर्दा। 30.6.1928
7. वही वही वही

अछूत और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष का यह प्रश्न उस युग का यथार्थ था जो हिन्दू समाज की एकता को गंभीर चुनौती देता था । मतवाला ने अछूतों के समर्थन में और ब्राह्मण पोंगापंथियों के खिलाफ अनेक बार हाँक लगाई है, कभी बात समझाने के लहजे में तो कभी फटकारने के लहजे में, यथा ---"स्वामी विश्वानंद ने टीटागढ़ अछूत कुलियों की सहायता से बारकपुर में हिन्दुओं की लज्जा रख ली । मंदिर बच गया। अब किसी पुजारी-पुण्डव को शीघ्र वहाँ पहुँच कर अपना अड्डा जमा लेना चाहिए और मंदिर को अछूतों से बचाने का पूरा प्रबंध कर डालना चाहिए । नहीं तो धर्म की नाँव मँझधार में ही डूब जायेगी ।"[8]

मराठा जोतधारी कृषक वर्ग तो काग्रेस से मिल गया किन्तु अछूत महारों ने 1920 के दशक से डा० अम्बेडकर के नेतृत्व में एक स्वतंत्र आंदोलन विकसित कर लिया । उन्होंने मुख्यरूप से अलग प्रतिनिधित्व की मांग, तलाबों का उपयोग एवं मंदिर प्रवेश की मांग और "महारवतन" । महारों द्वारा गाँव के मुखियों के घर पारम्परिक रूप से किया जाने वाला सेवा कार्य । को समाप्त करने की मांग की।समाज की इस बुराई को मतवाला बड़े तार्किक ढंग से उठाया है, यह अलग बात है कि उसमें व्यंग्य और आक्रोश का स्वर अधिक है ---" जिनकी छाया छू जाने से तुम अपने को "कुम्भीपाक" का प्राणी समझने लगते हो ? जिनके परिश्रम की कमाई खाकर तुम्हारी तोंद भिस्ती की मशाक की तरह फूली रहती है, और जिनका मुँह देख लेने से तुम्हारी यात्रा बिगड़ जाती है, वे ही धर्म के आधार संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राणी, सृष्टि के सेवक और रक्षक तथा परमात्मा के प्यारे तुम्हारी औंधी खोपड़ी को सीधा करने के लिए कमर कसकर तैयार हो गये हैं ।"[9]

---

8. "मतवाला" 5 जनवरी 1924 ई. पृ0 288। मतवाले की बहक ।
9. "मतवाले का मत" सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 65, 19.04.1924
" है अजब औंधी तुम्हारी खोपड़ी।"

मद्रास में भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था को कड़ी चुनौती मिली । "पेरियार" ई. वी. रामास्वामी नायकर ने जो असहयोग आंदोलन में काफी सक्रिय थे । उन्होंने "आत्म सम्मान" आंदोलन शुरू कर दिया जो मुख्यत: ब्राह्मण व्यवस्था विरोधी था । जो ब्राह्मण पुरोहित के बिना विवाह करवाने से लेकर मंदिरों में बलात् प्रवेश और मनुस्मृति को जलाने अर्थात पूर्ण नास्तिकता तक पहुँच गया। "मतवाला" का स्वर भी बहुत कुछ इसी तरह का था । किन्तु वह सम्पूर्ण ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती नहीं देना चाहता, बल्कि उन कुत्सित और संकीर्ण विचारों की आलोचना करता है जो स्वयं हिन्दू धर्म के लिए घातक हैं । अछूतों के मंदिर प्रवेश के प्रश्न को "मतवाला" ने गंभीरता से उठाया है । मंदिर प्रवेश का यह प्रश्न धार्मिक से कहीं अधिक सामाजिक है । अत: इसके द्वारा मतवाला समतावादी व्यवस्था की वकालत करता है । यहाँ भी इसका तेवर व्यंग्य का ही है, लक्ष्य है छुआछूत उन्मूलन, परन्तु केन्द्र में है हिन्दू धर्मवादी मालवीय जी :---" मालवीय जी पर गांधी जी का रंग चढ़ गया है, इसलिए वे चमारों और भंगियों को मंदिरों में दर्शन करने और कुओं में पानी भरने का अधिकार दिलाना चाहते हैं । श्रीमान् 108 आचारी जी, और 218 महन्तजी महराज ! आप पर भी स्वार्थ का गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ है । आप अपने पाक-साफ कूप को बंद किये रहिये, जमाना नाजुक है, बल्कि मंदिर में भी पर्दा लगा दीजिए, ताकि पर्दा नशीनों पर किये जाने वाले आपके अत्याचारों को संसार देख न सके । "[10]

दलितोद्धार का प्रश्न मतवाला में दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण बना रहा, एक तो देश की एकता के लिए और दूसरे स्वयं समाज की एकता के लिए। दलितोद्धार मात्र अछूतों को सामाजिक समानता देने तक ही सीमित नहीं था बल्कि उनका हर दृष्टि से विकास करना आवश्यक था । जैसा कि "मतवाला"

---

10. "मतवाला" 17 नवम्बर 1923, पृ0सं. 146

का मत है ---" दलित, अछूत ही हिन्दू जाति की फुलवाड़ी और असली खाद हैं । उनकी सहायता पाये बिना हिन्दू जाति कभी पनप ही नहीं सकती । राजे-महाराजे, पतित साधु और शास्त्री महंतादि भले ही छूट जाँय पर अछूतों और दलित भाइयों को न छोड़ना चाहिए।"[11]

मतवाला ने तत्कालीन सामाजिक जड़ता की समस्या को एक-एक करके उभारा । 19वीं सदी के धर्म सुधार आंदोलन के इतने प्रचार-प्रसार के बावजूद हिन्दुस्तान की जनता सुधरी तो नहीं, यह सामाजिक जड़ता देश की प्रगति के लिए दीमक का काम कर रही थी । देश के विकास और स्वर्णिम भविष्य के लिए जितने घातक बाहरी शत्रु-देश थे, उससे कहीं अधिक घातक ये भितरघाती देशवासी जो धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि के आधार पर भोली-भाली जनता को बाँटकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे थे । इन्हीं जड़बुद्धि भारतीयों को लक्ष्य करके "मतवाला" "चाहिय अमिय जग जुरै न द्वाँछी" शीर्षक के अंतर्गत व्यंग्य करता है ---" जिस देश की जलवायु में देश द्रोहियों, कायरों, पाखण्डियों और खुशामदीनीचों को सांस लेने का अधिकार प्राप्त है । उस देश पर यदि राजा रामचन्द्र भी न्याय करें तो बदनामी के सिवा नेकनामी नहीं पा सकते ।"[12]

जातिवादी संकीर्णता को तोड़ने के लिए मतवाला ने बार-बार प्रहार किया । इसके चलते मतवाला ने अछूत आंदोलन का समर्थन किया तथा बार-बार हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों को अपने अछूत भाइयों को गले लगाने का आग्रह किया । परन्तु इसका स्वर आज के दलित आंदोलन

---

11. "मतवाला" 2 फरवरी 1924, पृ0 387
12. "मतवाला" 24 नवम्बर 1923, पृ0 158

जैसा नहीं था । इसमें अछूतोद्धार की बात तो कही गई है पर अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए तनकर खड़े होने की बात पर कम जोर दिया गया है । फिर भी ऐसा नहीं की सामाजिक विकृति कोहल्के हाथों लिया गया है बल्कि ऐसे ढपोरशंख ब्राह्मणों को खूब फटकार लगाई गयी है, ठीक कबीर की शैली में -- " अपनी-अपनी जाति की ओर अपने बूढ़े धर्म की रक्षा चाहते हो तो अछूतों से घृणा करो, गोभक्षकों से सलाम करते रहो और साथ ही महन्तो को भी माल चभाते रहो क्योंकि ये भवसागर के जहाज हैं । "[13]

यही नहीं कहीं-कहीं पर मतवाला में इन अछूत आंदोलनों को ब्राह्मणवादी व्यवस्था के लिए चुनौती के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।नारायण गुरू द्वारा प्रारम्भ किये गये 'वैकम सत्याग्रह आंदोलन' जो कि मूलत: अछूत आंदोलन था । जिसमें उन्होंने अछूतों को सार्वजनिक सड़कों और मंदिरों में प्रवेश करने का जोरदार समर्थन किया । इस आंदोलन के समर्थन में मतवाला का स्वर कम तीखा नहीं था ----" मद्रास के वैकुम में अछूत वीरों का सत्याग्रह संग्राम जारी है । कितने ही सेनापति गिरफ्तार हो चुके हैं । वीरमण मोरचाबन्दी किये मैदान में डटे हैं। अब धर्म - ध्वजियों को अपनी तोप नुमा तोंद भिड़ाने के लिए तैयार हो जाना चाहिए ।"[14] यह छुआछूत की बीमारी केवल व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित नहीं थी बल्कि उन दिनों 1924-25 ई. में "बसअड्डा" और 'रेलवे स्टेशनों' पर भी पानी पिलाने के लिए ब्राह्मण ही नियुक्त किये जाते थे । "मतवाला" की नजर से ये छोटी-छोटी बातें भी नहीं छूट सकी । उसने इसी बात को बहुत ही दिलचस्प ढंग से व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया ---

---

13. "मतवाला" 19 अप्रैल 1924, पृ0 615
14. "मतवाला" 19 अप्रैल 1924, पृ0 615

"बेहूदे को प्यास भी लगी तो ऐसे बेमौका । इसलिए बीबी और बाबा आग बबूला होकर वीरतापूर्वक रोगी पर टूट पड़े और उसे चारपाई सेखींच लिया। उसके बाद उसका कान पकड़ कर ऐसा टहलाया कि दूसरे दिन उसकी प्यास सदा के लिए बुझ गयी । रेलवे वालों को चाहिए कि स्टेशनों पर "पानी पाण्डो" की जगह कुछ ऐसी जवां मर्द नर्सें भर्ती कर लें । बहुत खर्च बच जायेगा और बालटी और लोटे की कबाहट भी दूर हो जायेगी ।"[15]

समाज में फैली बाल-विवाह जैसी कुरीति को मतवाला ने व्यंग्य का माध्यम बना है । हिन्दू समाज में लड़की जन्म से ही पिता के ऊपर बोझ मानी जाती है । अत: इससे छुटकारा पाने के लिए पिता बाल्यावस्था में ही बाल विवाह कर देता था परिणाम स्वरूप अधिकांश बाल विवाहिता यौनावस्था तक पहुँचने के पहले ही विधवा हो जाया करती थी । समाज उस समय विधवा विवाह को भी मान्यता नहीं देता था । परिणाम स्वरूप ऐसी युवतियों का सारा जीवन वैधव्य में गुजर जाता था । इसी बाल-विवाह की कुप्रथा को गोबध के साथ जोड़कर "मतवाला" में व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया --"आपने कहा कि दूध देने वाली गायों को हिन्दू बेंचा न करें । तो क्या करें? उनका अँचार डाले ? क्या मौलाना को मालूम नहीं कि बूढ़ी गायों और क्वाँरी लड़कियों को जो हिन्दू शीघ्र ही कोई हीला नहीं धराता वह नरकगामी होता है ।"[16]

समाज में फैली घूसखोरी की समस्या को भी "मतवाला" में उभारा

---

15. "मतवाला" 19 अप्रैल 1924, पृ0 615

16. "मतवाला" 5 जनवरी 1924 ई. पृ0 288

गया है । घूसखोरी किसी राष्ट्र की अकर्मण्यता और उसके नागरिकों के ईमान के स्तर को जाँचने-परखने का पैरामीटर है । यह व्यक्ति के चारित्रिक पतन के साथ-साथ उसके कर्तव्यहीनता को बढ़ावा देती है । घूसखोरी की इस बीमारी का सर्वाधिक शिकार पुलिस वर्ग हुआ है। इसी को लक्ष्य करके "मतवाला" में व्यंग्य किया गया है ।----" घूसखोरी का बाजार खूब गरम है। लोगों को यह मालूम होना चाहिए कि चौरी-चौरा हत्याकाण्ड के बाद सरकार ने पुलिस को अमन चैन की ठेकेदारी दी है । इसलिए वे शान्ति की ठेकेदारी का टैक्स वसूल कर रहे है, घूस को तो अब पुलिस महसूल समझती है ।"[17]

वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराई पर "मतवाला" में बहुत अधिक तो नहीं परन्तु संकेतात्मक चिंता व्यक्त की गई है जो इस पत्र की रचनात्मक सजगता का परिणाम है । " पाँच सौ नौजवान बीबियाँ वेश्यावृत्ति के लिए इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका भेजी गई हैं । लाहौल -विला-कुअत । इलाहि तौबा। इलाहि तोबा।"[18]

सती प्रथा जैसी महामारी समाज में अपनी चरम सीमा पर थी। यदि कोई स्त्री सती होने से ऐनकेन प्रकारेण बच गई तो शुरू होता था 'पवित्र वैधव्य नारकीय जीवन' इसके अलावा बहु-विवाह प्रथा भी ऐसी ही थी जो तत्कालीन परिवेश में नारी के प्रति पुरूषों की कुटिल मंशा को उभारती है । इस दूषित मानसिकता को उजागर करते हुए इतिहासकार विपिन चंद्र का कहना है कि ---" मिसाल के तौर पर बंगाल के एक 80 वर्षीय ब्राह्मण की करीब 2 सौ पत्नियाँ थी और उसकी सबसे छोटी पत्नी की उम्र थी सिर्फ आठ साल। कई

---

17. "मतवाला" 27 अक्टूबर 1923 ई. पृ0 104
18. "मतवाला" 22 दिसम्बर 1923 पृ0 244

लड़कियाँ तो शादी के दिन के बाद दोबारा शायद ही अपने पति को देख पाती हों । इसके बावजूद जब उनके पति की मृत्यु होती थी तो समाज उनसे अपेक्षा करता था कि वे सती हों ।"[19]

इस प्रकार नारी जीवन के इन त्रासदपूर्ण सवालों से जहाँ-तहाँ मतवाला भी टकराता था । समाज पर व्यंग्य करते हुए हास्य के पुट में सती प्रथा की बात "मतवाला" में कही गयी हैं । यद्यपि यहाँ इतना गंभीर चिन्तन तो नहीं है, परन्तु इस बुराई का विरोध अवश्य है ---" आगरा के कुवासाधूराम मोहल्ले में एक स्त्री अपने पति के मरने पर मकान की ऊपरी मंजिल से कूदकर मर गई है । भला अब इस सती-प्रथा को कौन रोक सकेगा ?"[20]

महिलाओं की स्थिति को सुधारने का यह प्रयास केवल मानवतावादी दृष्टिकोण से ही उपयुक्त नहीं था बल्कि इनके सुधार में स्वयं पुरूष का भी सुधार निहित था, क्योंकि परिवार नागरिक गुणों की प्राथमिक पाठशाला होता हैं और इसमें महिलाओं की अहम् भूमिका होती है । 19वीं सदी के सुधारवादियों के दृष्टिकोण को संकीर्ण नहीं कहा जा सकता है । प्रो० विपिन चन्द्र का मानना है कि ---" जिस देश में महिलायें उपेक्षित हों, वह देश सभ्यता के क्षेत्र में कभी भी उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकता ।"[21]

विधवा-विवाह पर सबसे ज्यादा प्रगतिशीलता बंगाल ने दिखाई, सर्व प्रथम विधवा-विवाह बंगाल में ही शुरू हुआ । इस विवाह को उत्सुकतावश हजारों लोग देखने आये । इसी तरह महाराष्ट्र में पहली बार विधवा-विवाह

---

19. "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष"-- प्रो० विपिन चंद्र, पृ० 48
20. "मतवाला" 15 सितम्बर 1923, पृ० 30
21. "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष "--प्रो. विपिन चंद्र, पृ० 52

विधवा-विवाह में भीड़ के उग्र हो जाने पर पुलिस को लाठी चार्ज करना पड़ा । अत: विधवा-विवाह के इस ज्वलंत सामाजिक प्रश्न पर "मतवाला" की भी टिप्पणी आवश्यक ही थी और यह बहुत कुछ कबीर की उलटबांसी व्यंग्यशैली में हुई ---" आर्य्य!सेवक कहता है कि भारत वर्ष में पैंतीस लाख विधवाएं है, जिनमें चौंतीस लाख केवल हिन्दू हैं । बाइस करोड़ हिन्दुओं के लिए इतनी विधवाएं तो " दाल में नमक " के बराबर भी नहीं है, तब लोग क्यों विधवा-विधवा चिल्लाकर कान खाये जाते हैं ।"[22]

.....

---

22. "मतवाला" अंक, 19, 1924 ई. पृ0 616

धार्मिक परिस्थिति :

19वीं सदी का युग धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक वैमनस्य, रूढ़िवाद और अंधविश्वास का युग था । इस सामाजिक व्यवस्था की विषम स्थिति को अधिकाधिक विषाक्त बनाने में मुख्यरूप से हिन्दू और मुसलमान दोनों का बराबर योगदान रहा । मुसलमानों का यह विरोध सिर्फ हिन्दुओं से था परन्तु हिन्दू समाज स्वयं आंतरिक वैमनस्य से भी ग्रस्त था अत: उसे एक साथ दो स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा था, एक तो वाह्य तौर पर मुसलमानों से, और दूसरे आंतरिक रूप से पोंगापंथी ब्राह्मणों और संकीर्ण मानसिकता वाले रूढ़िवादी हिन्दू ताकतों से । जैसा कि राजा राम मोहन राय का कहना था--- "मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि धर्म के वर्तमान ढाँचे ने हिन्दुओं को इस बुरी तरह जकड़ रखा है कि उनके राजनीतिक हितों के बारे में कुछ किया ही नहीं जा सकता । जाति-भेद और जातीय अभियान ने उन्हें अनगिनत वर्गों और उपवर्गों में बाँट दिया है, जिससे उनमें देश-प्रेम की भावना ही पूरी तरह खत्म हो गयी है ।"[23]

राजाराम मोहन राय द्वारा 1828 ई. में बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ धार्मिक सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । हिन्दुओं के प्रमुख धर्म सुधार आंदोलनों में महाराष्ट्र का 'प्रार्थना समाज' और 'परमहंस मण्डली,' पंजाब और उत्तर भारत में 'आर्य समाज' प्रमुख रहे । इसी प्रकार अन्य जातियों में भी सुधार आंदोलन चले, इनमें उत्तर प्रदेश की "कायस्थ सभा" पंजाब में 'सरीनसभा' मुख्य है । इसके साथ ही साथ पिछड़े वर्ग के आंदोलनों में माहाराष्ट्र में "सत्यशोधक समाज", केरल में "श्री नारायण धर्म परिपालन सभा " ने सुधार की

---

23. "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष "----प्रो. विपिन चंद्र, पृ0 46

प्रक्रिया तेज कर दी ।

इसी प्रकार 1851 में दादाभाई नौरोजी और नौरोजी फरइन जी ने बम्बई में पारसी धर्म में सुधार हेतु "रहनुमाई मजदयान सभा" की स्थापना की । जिसका प्रमुख लक्ष्य स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देना और पारसियों के सामाजिक विधान में एकता लाना था । 1875 ई. में मुसलमानों को पाश्चात्य शिक्षा देने और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए "अलीगढ़ आंदोलन" का सूत्रपात हुआ । 1875 ई. में ही दयानंद सरस्वती ने हिन्दू धर्मावलंबियों के धर्मान्तरण को रोकने के लिए तथा उनकी दकियानूसी रूढ़ियों जैसे - जाति व्यवस्था, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, बाल-विवाह आदि का विरोध करने, एवं समुद्र यात्रा स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह आदि को बढ़ावा देने के लिए "आर्य समाज" की स्थापना की । इसी प्रक्रिया को बढ़ावा देते हुए 1923 ई. में श्रद्धानंद ने हिन्दुओं में 'शुद्धि' और "संगठन" आंदोलन चलाया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मुसलमानों ने भी "तबलीग" (प्रचार) और "तंजीम" (संगठन) आंदोलन चलाया । इन सुधार आंदोलनों का प्रभाव यह रहा कि "हिन्दू और "इस्लाम" दोनों धर्मों की दबी -छुपी रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और साम्प्रदायिक कुटिल मंशा उभर कर सामने आई । ये सुधार आंदोलन साम्प्रदायिकता की वृद्धि में तो प्रमुख कारण रहे हैं किन्तु धार्मिक ठेकेदारों की मौकापरस्ती और छद्म पाखण्ड को उभारने तथा उसका पर्दाफाश करने में हिन्दी पत्रकारिता का विशेष महत्व रहा है । "मतवाला" ऐसे में अग्रणी रहा है । यह दूसरी बात है कि उस पर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषक होने का आरोप लगता रहा जो कुछ हद तक सही भी था परन्तु ऐसा नहीं कि इसके चलते वह इन सामजिक बुराइयों को नजरअंदाज करता रहा हो ।

डा0 राधु और अलवार नरेश को भारत का प्रतिनिधि चुने जाने पर

पत्र ने काफी खीज व्यक्त की है । देश की जनता को ऐसे प्रतिनिधियों से आशा और उम्मीद रखने की मूर्खता पर पत्र बेबाक ढंग से टिप्पणी करता है । और साथ ही सामाजिक विषमता का आलेख में चित्रण भी करता है--- "जिस देश में भाई का गला भाई घोटता है, जिस देश में अबलाओं पर नाना प्रकार के सामाजिक अत्याचार होते हैं, जिस देश में स्वार्थान्धता और धर्मान्धता का बोलबाला है, जिसमें शिक्षा द्वारा गुलामी के भाव हृदयंगम किये जाते हैं और जिसमें आत्याभिमान लेशमात्र भी नहीं रह गया है, उस पर यदि अंग्रेज अन्याय करते हैं तो वे ईश्वर की इच्छा को स्पष्ट चरितार्थ करते हैं ।"[24]

इस प्रकार "मतवाला" देश की उस स्थिति पर कटु प्रहार करता है जो दोनों सम्प्रदायों को जड़ तथा गतिकालिक बनाये हुए हैं । हमने हिन्दू धर्म की आन्तरिक विषमता और संघर्ष को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दिखाया है। अत: इस प्रसंग में हम मुख्यत: हिन्दू और मुसलमान के मध्य होने वाले संघर्ष और दोनों के मध्य फैली विषम जड़ता का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे ।

हिन्दू-मुस्लिम टकराव देश और समाज दोनों के लिए घातक था। हिन्दू-मुस्लिम टकराव का मुख्य विषय गोकुशी और मस्जिद के सामने बाजा था परन्तु इसको समय-समय पर साम्प्रदायिक रंग चढ़ाने का काम उपनिवेशवादी ताकतें करती रही हैं जिनके आधार पर साम्प्रदायिक दंगे होते थे । इन दंगों के पीछे किसी प्रकार की सच्चाई नहीं बल्कि अफवाह काम करती थी ।"मतवाला" के प्रकाशन के समय साम्प्रदायिक दंगे आम बात थी, इस काल की सबसे गंभीर और नकारात्मक प्रवृत्ति यह थी कि इस दशक ।1920-30। में हिन्दू-मुस्लिम

---

24. "मतवाला", 24 नवम्बर 1923, पृ0 158

संप्रदायवाद की जितनी वृद्धि हुई, उतनी पूर्व के वर्षों में नहीं । जैसा कि सुमित सरकार का कहना है :-----"सितम्बर 1924 में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में एक हिंसक हिन्दू विरोधी उपद्रव हुआ जिसमें 155 लोग मारे गये, अप्रैल और जुलाई 1926 के बीच कलकत्ता में दंगों की तीन लहरें आईं जिसमें 138 लोग मारे गये । उसी वर्ष ढाका, पटना, रावलपिण्डी और दिल्ली में भी उपद्रव हुए । 1923 और 1927 के बीच संयुक्त प्रान्त में, जो सर्वाधिक दंगा प्रभावित प्रान्त था, 91 साम्प्रदायिक उपद्रव हुए ।"[25]

इन साम्प्रदायिक दंगों के मुख्यत: दो कारण थे, मुसलमानों को मस्जिद के सामने बाजे बजाये जाने पर आपत्ति थी और हिन्दुओं को गोहत्या पर । परिणामस्वरूप राजनीति का साम्प्रदायीकरण होने लगा और कांग्रेस में भी हिन्दू और मुस्लिम लाबी अपने-अपने धार्मिक मुद्दों का समर्थन करने लगी। 1992 में प्रारम्भ होने वाले खिलाफत आंदोलन का रूख बहुत कुछ मुल्लावादी था। जामायतुल-उल्मा-ए-हिन्द के दिसम्बर 1921 ई. के कार्यक्रम में विभिन्न धार्मिक समुदायों के संघ के रूप में स्वतंत्र भारत की परिकल्पना की । इधर कांग्रेस का प्रचार भी धर्म-निरपेक्ष नहीं रह गया, उसमें भी हिन्दूवादी स्वर कुछ-कुछ उभरने लगा जिससे कांग्रेस में मुसलमानों की दिलचस्पी कम होने लगी ।

इस धार्मिक तनाव में "मतवाला" का झुकाव बहुत कुछ हिन्दुत्व की ओर था । मतवाला का एक वर्ग ऐसा था जिसमें शिवपूजन सहाय, मुंशी नवजादिकराय श्रीवास्तव तथा महेन्द्रपाल सेठ स्वराज्य प्राप्ति के लिए मुसलमानों और हिन्दुओं की एकता को संभव नहीं मानते थे । इसने बार-बार इस एकता के प्रयास को

---

25. "आधुनिक भारत"- सुमित सरकार, पृ0 270-71

झूठा करार दिया और अपने व्यंग्यात्मक लेखों द्वारा मुसलमानों की कटु आलोचना की ---" कोई कानों में कह रहा है कि अजमेर में हिन्दू-मुसलमानों में जो मेल हुआ है वह टिकाऊ नहीं है। तो इससे क्या? विकाऊ तो है? असहयोग के बाजार में चलेगा तो? राजनीतिक बाजार तो गरम रहेगा? फिर देखा जायेगा। निकल की नकली एकन्नी-दुअन्नी की तरह मेल का काम चलाऊ सिक्का भी कुछ दिन चल जाय तो क्या बुरा है।"[26]

DISS
4CP,152)=MAT: J(Q)
152N7

धार्मिक संकीर्णता का बोलबाला केवल हिन्दुओं में ही नहीं था बल्कि मुसलमान भी इससे पीड़ित थे। इस धर्मान्धता के केन्द्र तत्कालीन भारतीय सांस्कृतिक नगर थे। इन धार्मिकता के गढ़ों में देश की भोली-भाली जनता छल-छद्म-भय आदि दिखाकर लूटी जा रही थी। "मतवाला" में इस भेड़िया धसान की प्रवृत्ति को भी उभारा गया है ---" भूतनाथ की राजधानी काशी की स्त्रियाँ भूतों की पूजा करके संतानवती होने की चेष्ठा कर रही हैं। काशी के पंडितों को मर-मर कर भूत होने का ऐसा अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए।"[27]

TH-6746

"मतवाला" का यह हिन्दू जागरण सम्बंधी कथन देखकर ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह भी अन्य पोंगापंथी ब्राह्मणों की ही तरह धार्मिक दकियानूसी का शिकार था। बल्कि जहाँ कहीं हिन्दू धर्म में उसे संकीर्णता और मठबाजी की दूषित मानसिकता नजर आयी वहाँ उसने हिन्दुओं को खूब लथेड़ा। हिन्दुओं को सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य "मतवाला" में खूब उद्घाटित किया गया है ---" काशी के "तर्काड़ो" और " व्याकरण-व्याघ्रों की राय में

---

26. "मतवाला" 15 दिसम्बर-1923, पृ0 212
27. वही वही पृ0 212

हिन्दुओं की सामाजिक कुरीतियाँ भी सनातन धर्म है । सनातन धर्म की यह नयी व्याख्या लोगों को याद कर लेनी चाहिए ।"[28]

हिन्दू मंदिरों की भेड़िया धसान प्रवृत्ति को भी "मतवाला" में व्यंग्य का माध्यम बनाया गया है । मंदिरों में स्त्रियों के साथ होने वाले इस छेड़-छाड़ की प्रवृत्ति को और पुजारियों के कुटिल विचार को इस रूप में उभारा गया है ---" तारकेश्वर के मंदिर में दर्शनार्थिनी युवतियों के साथ कभी-कभी प्रेम व्यवहार हो जाया करता है । बिना दाम दिये पुण्य लेनो वालों के लिए अर्द्धचंद्र की व्यवस्था होजाती है, हराम का माल हजम करने की सदिच्छा से प्रेरित होकर "तारकेश्वर नरेश" भी कभी-कभी किसी पुण्यशीला रूपवती पर दयादृष्टि फेर देते हैं ।"[29]

मतवाला ने ढोंगी सन्यासियों की भी खबर ली है, जो दिखावा तो त्याग और तपस्या का करते हैं परन्तु आड़े - छिपे काम पशुओं से भी ओछा करते हैं । ये साधु, सन्यासी जो बड़े-बड़े ट्रस्ट और मठों में निवास करते हैं, कार से चलते हैं और तरह-तरह के पकवान खा-खाकर तोंद फुलाते चले जाते हैं । परन्तु इनके पास जो धन आता है वह भारत की भोली भाली जनता की पसीने की कमाई होती है जिसे वे उन्हें बेवकूफ बनाकर ऐंठते हैं ---" ये भूकर वृत्ति वाले, ईश्वर के ऐजेण्ट, धर्म के ठेकेदार, सन्यासी और साधु नाम को कलंकित करने वाले नर राक्षस, देवताओं के नाम पर, धर्म की आड़ में जो जघन्य कर्म कर रहे हैं, उसकी कथा सुनकर कलेजा काँप उठता है, शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।"[30]

28. "मतवाला" । सितम्बर, 1923 ई. पृ0 11
29. "मतवाला" 19 अप्रैल 1924 ई, पृ0 615
30. "मतवाले का मत" सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 67, 17 मई 1924

मतवाला हिन्दू जड़ता के साथ-साथ मुसलमानों की जड़ता को भी उभारा है । परन्तु यहाँ मतवाला का स्वर हिन्दू धर्म की तरह सुधारवादी तो नहीं बल्कि आलोचना का ही अधिक रहा है । इसमें खासकर मुसलमानों की उन धार्मिक प्रवृत्तियों पर चोट की गयी है जो हिन्दू-मुस्लिम टकराव का मुख्य कारण थी । हिन्दू जिस प्रकार गोहत्या को पाप समझते थे उसी तरह मुसलमान भी मस्जिद के सामने बाजा बजाने को पाप समझते थे । इसी धार्मिक प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए मतवाला ने उद्घाटित किया है - भूपाल की बेगम साहिबा बड़ी बेशर्म हैं । वे बाजा बजाने से चिढ़ती है । उन्होंने अपनी हिन्दू प्रजा को रामलीला में बाजा नहीं बजाने दिया । उलेमाओं की ओर से उन्हें सुल्तान की उपाधि मिलनी चाहिए ।"[31]

मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता के साथ-साथ उनके द्वारा किये जाने वाले बलात्कार और ज्यादती की घटनाओं को हास्य-व्यंग्य की शैली में कहा गया है ---" नागपुर के मुसलमान बड़े बहादुर हैं, क्यों कि पुरूषों के बैर का बदला स्त्रियों से चुकाना चाहते हैं । छोटे भाई की हैसियत से बड़े भाई की स्त्री को वे भाभी समझ रहे हैं । नागपुरी हिन्दुओं को अपनी स्त्रियों पर कड़ी निगाह रखनी चाहिए, क्योंकि आज कल के लहुरे देवर बड़े उत्पाती होते हैं ।"[32]

.....

---

31. "मतवाला" 17 नवम्बर 1923, पृ0 146

32. "मतवाला" 8 दिसम्बर 1923 ई. पृ0 192

राजनैतिक परिस्थिति :

सन् 1920 और 1930 का समय राजनीतिक दृष्टि से अभी उथल-पुथल तथा हलचल का काल था । उस समय काग्रेस में पड़ने वाले फूट के चलते मार्च 1923 तक उसकी संख्या काफी घट गयी । यथास्थितिवादी और स्वराजियों के मध्य निरंतर बढ़ते वैमनस्य के कारण राष्ट्रीय आंदोलन के अस्तित्व के लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया । साथ ही काग्रेस आंदोलन में नरम पंथियों द्वारा अंग्रेज सरकार के सामने रखी जाने वाली मांगों की प्रवृत्ति भी बढ़ गयी । परन्तु सन् 1922 के बाद सबसे दुखद स्थिति यह हुई कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्थान पर साम्प्रदायिक ताकतों का बोलबाला बढ़ गया । इस भटकाव की राजनीति को पुन: सही मार्ग-दर्शन प्रदान करने का काम "साइमन आयोग" ने किया, जिसने सम्पूर्ण देश की सोयी हुई जनता में चेतना की लहर पैदा कर दी और फिर एक बार राष्ट्रीय आंदोलन सम्पूर्ण भारत के क्षितिज तक फैल गया । राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने, खासकर गांधी जी ने एक नई दिशा प्रदान करके देश की जन-उर्जा का उचित प्रयोग जिस दिशा में किया वह था "सविनय अवज्ञा आंदोलन ।

काग्रेस की भीतरी गुटबाजी के चलते राष्ट्रीय आंदोलन की क्षमता कम हो गयी । नागपुर में कुछ स्थानों पर काग्रेस झण्डे के प्रयोग पर लगे हुए प्रतिबन्ध के विरूद्ध 1923 ई. के मध्य "झण्डा सत्याग्रह" आरम्भ हुआ । यहाँ तक कि विभाजित हुए गुट ने 1923 में होने वाले चुनाव में लड़ने के लिए स्वराज पार्टी का गठन कर लिया । "मतवाला" में भारत की इस तत्कालीन परिस्थितियों में काग्रेस के विभाजन पर भी व्यंग्य किये गये हैं जो एक तरफ तो इन विभाजन के दुष्परिणामों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करता है तो दूसरी तरफ

नेताओं की मौका परस्ती का पर्दाफाश भी करता है।" राजनीतिक मतभेद जाति की सजीवता का लक्षण है। इसी से यहाँ के राजनीतिज्ञों में कई दल दिखाई पड़ रहे हैं। यदि "दो चार" दल और हो गये, तो फिर लीजिए न स्वराज्य। " अधिकस्य अधिकं फलम्" ।[33]

सन् 1923-30 के बीच काँग्रेस ने कई सत्याग्रह चलाए। 1923-24 में बल्लभभाई पटेल ने "बरसाड सत्याग्रह" गुजरात के ग्रामीण इलाके में चलाया जो पहला सफल गाँधीवादी सत्याग्रह था। 1924-25 में त्रावणकोर राज्य में स्थित "वैकम" में मंदिर प्रवेश का पहला सत्याग्रह आंदोलन हुआ। यह आंदोलन निम्न जाति के इझवाओं और अछूतों द्वारा गांधीवादी तरीके से चलाया गया। यद्यपि इन सभी सत्याग्रहों की अलग-अलग सफलता और असफलता की बात मतवाला नहीं करता फिर भी इनके सम्मिलित प्रभाव पर कहीं-कहीं व्यंग्य अवश्य किया है ---" पं. मोतीलाल नेहरू की राय में नागपुर में स्वयंसेवकों के सत्याग्रह ने कुछ नहीं किया। उनके त्याग से देश का एक इंच भी अग्रसर नहीं हुआ। देखें आप की कौंसिल का आग्रह देश को कितने फिट आगे करता है।"[34]

"मतवाला" का गांधीवादी अहिंसात्मक आंदोलन में पूर्ण विश्वास था परन्तु वह इस अहिंसात्मक आंदोलन की कमजोरियों को भी नजरअंदाज नहीं कर सकता था। उस समय काँग्रेस पार्टी के बैनर तले होने वाली बड़ी-बड़ी सभाओं और जनता से चंदे के रूप में उगाहे गये धन की बर्बादी साथ ही इन सभाओं की व्यर्थता पर "मतवाला" बराबर व्यंग्य करता रहा ---- "चन्दे की रकम ने

---

33. "मतवाला" 29 दिसम्बर 1923 ई. पृ0 260
34. "मतवाले का मत" कर्मेन्दु शिविर, पृ0 119, 29.9.1923,
" औघड़ो ने थूक कर चाटा "

"माले मुफ्त दिले बेरहम" का सबक सीखा, देश के हजारों रूपयों पर और साथ ही जनताकी आशाओं पर पानी फिर गया । दरिद्र भारत का द्रव्य पानी की तरह बहाकर पानी पर नींव डाली गयी ।"[35]

देश की आजादी के लिए काग्रेस की नीति बहुत कुछ समझौतावादी थी । देश की आजादी को प्राप्त करने से पहले हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर काग्रेस ने अधिक ध्यान दिया था । क्योंकि आपसी वैमनस्य राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर ही नहीं बल्कि मृत्युप्राय भी कर सकता था । परन्तु मतवाला की राय में देश की स्वतंत्रता पहली आवश्यकता थी जबकि हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्थान दूसरा था । अपनी इसी भावना को उसने व्यंग्य में व्यक्त किया ---" देश भर की आँखें लगी हुई थी उसी विशेष काग्रेस की ओर । पर उन आँखों में दोनों हाथों से धूल झोंक दी गयी । सिर काटकर बालों की रक्षा की गयी । आजाद साहब ने आजादी के साथ फरमा दिया कि " गोली मारो असहयोग को, दाढ़ी और चुटिया के गठबंधन पर अक्षत, गंगाजल और सुपाड़ी का संकल्प छोड़ दो ।"[36]

अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीयों के हितों के लिए मनोनीत किये जाने वाले प्रतिनिधियों के चुनाव और इस चुनाव के पीछे उपनिवेशवादी सरकार की मंशा तथा इस पर जनता की प्रतिक्रिया आदि तत्कालीन प्रश्नों से "मतवाला" की टकराहट बार-बार हुआ करती थी । डा. सप्रू और अलवार नरेश को अंग्रेज सरकार द्वारा इंग्लैण्ड की साम्राज्य परिषद में भाग लेने के लिए भारत का प्रतिनिधि

---

35. "मतवाले का मत" -कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 119, 29.9.1923
" औघड़ों ने थूक कर चाटा"
36. वही वही वही

चुने जाने पर ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त हुई ---"डा० सप्रू और अलवर नरेश को विश्वविख्यात होने का अच्छा मौका मिल गया। भारतीयों ने यह समझकर भी कि वे जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं बल्कि भारत-सरकार द्वारा भारतीय हित के लिए जबरन ठूँस-ठाँस कर बनाये हुए प्रतिनिधि है, उनकी ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखने की मूर्खता की है ।"[37]

1920 में महात्मागाँधी ने खिलाफत कमेटी को अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ 'असहयोग आन्दोलन' छेड़ देने की सलाह दी । पहली अगस्त 1920 को असहयोग आंदोलन छिड़ गया । 8 जुलाई 1921 ई. में कराँची के खिलाफत सम्मेलन में मुहम्मद अली ने मुसलमानों को सेना में रहना वर्जित घोषित कर दिया । 4 अक्टूबर को गाँधी जी के साथ काग्रेस के 47 वरिष्ठ नेताओं ने एक साथ बयान जारी करके मुहम्मद अली के बयान की पुष्टि की । उन्होंने असहयोग के तरीकों की घोषणा की कि ---" हर भारतीय नागरिक और सैनिक का कर्तव्य हे कि वह दमनकारी सत्ता से अपना नाता तोड़ ले, उसे किसी तरह का सहयोग न दें।"[38]

इस प्रकार असहयोग का यह स्वर "मतवाला" में भी गंभीरता पूर्वक व्यक्त हुआ हे । परन्तु इस असहयोग के साथ-साथ स्वदेशी का स्वर भी सुनाई पड़ता है जो तत्कालीन राष्ट्रीय आवश्यकता थी । यही वह साधन था जिसके द्वारा विदेशी शासन की जड़ को कमजोर किया जा सकता था । असहयोग आंदोलन के समर्थन में मतवाला का यह स्वर बहुत कुछ समझाने-बुझाने का रहा ---
"क्या हम चाहते हैं कि विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार किये बिना ही हमारी पुकार की सुनवाई हो जाय ? हम चाहते हैं कि

---

37. "मतवाले का मत" सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 124, 24.11.1923
"चहिय अमिय जग जुरै न छाँछी"
38. "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष"-प्रो. विपिन चंद्र, पृ0 138

घी भी न लगे और पक्की हो? क्या हम चाहते हैं कि असहयोग के सिद्धान्त लिपिबद्ध प्रस्तावों के शब्दों में ही पड़े रहें और हमारा उद्धार हो जाय?"[39]

1930 से 1932 ई. के बीच भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए तीन गोलमेज सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में कांग्रेस ने साइमन कमीशन के विरोध में हिस्सा नहीं लिया। वायसराय इरविन के साथ समझौता होने पर महात्मा गाँधी दूसरे सम्मेलन में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड गए परन्तु ब्रिटिश सरकार के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से कांग्रेस सहमत न हो सकी। गोलमेज सम्मेलन की इस असफलता की ओर मतवाला ने बड़ा ही अर्थपूर्ण संकेत किया है जो अतीतोन्मुखी होने के साथ-साथ भविष्य की ओर संकेत करता है ---"यह 'राउण्डटेबल कॉफरेन्स' शब्द अपनी अव्यक्त भाषा में जो पुरदद दास्तान कह रहा है वह बड़ी ही मर्म भेदिनी है, उसका विचार करने से कलेजा, मुँह को आता है। राउण्डटेबल! वही राउण्डटेबल जो कुछ ही समय पहले भारत सरकार का सर अपनी बगल में दबाये भारत की आधा पेट खाने वाली दरिद्र जनता के नेता लंगोटधारी गाँधी बाबा के सामने "बाँधे हुए हाथों को व उम्मीदें इजाबत" उपस्थित हुआ था और महात्मा जी ने अनावश्यक कहकर उसकी उपेक्षा की थी।"[40]

भारतीय व्यवस्थापिका परिषद में बड़े लाट की प्रार्थना पूर्ण सिफारिश की अवहेलना कर फाइनेन्स बिल को निर्दयतापूर्वक ठुकरा दिया गया तथा भारतवासी असेम्बली द्वारा बजट नामंजूर हो जाने पर स्वेच्छाचारी शासक को जनता शासक मानने को तैयार नहीं थी तो इसके पीछे उसे जलियाँवाला बाग गोली काण्ड की स्मृति जीवंत हो उठी---- उसे मतवाला ने यूँ स्पष्ट किया है।

---

39. "मतवाले का मत"-कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 126, 24.11.1923
"वहिय अमिय जग जुरै न छाँछी"
40. वही वही पृ0 141, 29.3.1924, "अजहुँ न बूझ अबूझ"

"उसकी आँखों के सामने जलियांवाला बाग में शहीद होने वाले चिरस्मरणीय पुरूष रत्नों की आत्माएं खड़ी हो गई, पुत्रहीन माताओं और अनाथिनी विधवाओं की करूण क्रंदन ध्वनि उसके कानों में गूँज उठी, क्रूर कर्मा डायर, ओडायर और जानसन की भीषण मूर्तियों का दानव-नृत्य उसे दिखायी दे गया ।"[41]

9 जनवरी 1915 ई. में भारत वापस आने के बाद महात्मा गांधी द्वारा चलाया जाने वाला अहिंसात्मक आंदोलन जिसकी पहली अनुगूँज 1916-17 में उत्तरी बिहार के "चम्पारण सत्याग्रह " में सुनाई पड़ी । महात्मा गाँधी ने ही इस स्वतंत्रता आंदोलन को जन आंदोलन बनाया । परन्तु सन् 1922 के असहयोग आंदोलन की असफलता से महात्मागांधी के नेतृत्व को भी चुनौती दी जाने लगी । परन्तु "मतवाला" ने इन सब अफवाहों से दूर रहकर महात्मागांधी के अहिंसात्मक आंदोलन की महत्ता को निरंतर उजागर करता रहा---"क्या कहा? तुम निहत्थे थे । सशक्त अत्याचारियों का सामना तुम कैसे कर सकते थे ? आह! यही तो तुम्हारी भूल है । इसी नपुंसक भाव को दूर करने के लिए -पशुबल के मुकाबले में आत्मबल की प्रधानता सिद्ध करने के लिए ही तो महात्मा ने अहिंसात्मक असहयोग की दीक्षा दी थी ।"[42]

नरमपंथियों की राजनीति की यह विचारधारा थी कि यदि हम उपनिवेशी शासन से सीधे न टकराते हुए उस पर दबाव डालकर आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में सुधार लागू करने की माँग करे तो धीरे-धीरे ये विदेशी शासक हमको शासन व्यवस्था में रियायते देते जायेंगे । इसलिए उन्होंने विज्ञापनों, माँग पत्रों और अदालती कार्यवाही का सहारा लिया । उनको सफलता तो मिली

---

41. "मतवाले का मत "-सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 144, 5.4.1924
    " पतलून ढीली होगई "
42. "मतवाले का मत " वही पृ0 147, 12.4.1924
    " महा अँधेर ! महा अँधेर!"

परन्तु वह नगण्य थी। इन विदेशी शासकों ने नरमपंथियों के सम्मान करने के स्थान पर उनका मजाक उड़ाना शुरू किया । साथ ही उनका दमन करना भी प्रारम्भ कर दिया । बंगाल विभाजन के खिलाफ नरमपंथियों का आन्दोलन जो केवल अदालती लड़ाई तक ही सीमित था, असफल रहा, तो गरमपंथियों ने उनकी कार्यवाहियों का उग्र विरोध किया । गरमपंथियों ने नरमपंथियों की इन राजनीतिक कार्यवाहियों को भिक्षावृत्ति का नाम दिया । "मतवाला" ने गांधीवादी विचारधारा का समर्थक होते हुए भी गरमपंथियों की इस भिक्षावृत्ति पर कटु प्रहार किया ---" भीख मांगते प्राय: आधी शताब्दी बीत गई, परन्तु सनहक खाली ही पड़ी रही। तुम ने एक टुकड़ा रोटी या चुटकी भर चावल तो क्या एक कण उच्छिष्ट भी उठाकर न फेंका । तथापि भीखमंगे हताश नहीं हुए, मांगना नहीं छोड़ा, फेरी लगाने से बाज नहीं आये।"[43]

जनवरी 1922 में सर्वदलीय सम्मेलन की अपील और साथ ही साथ वायसराय के नाम गांधी द्वारा भेजे गए पत्र का असर सरकार पर होता हुआ नहीं दिखाई पड़ा । नागरिक स्वतंत्रता की बहाली और राजनीतिक बंदियों की रिहाई तत्कालीन कांग्रेस की दोप्रमुख मांगों का जब सरकार पर कोई असर नहीं हुआ तो मजबूर होकर महात्मागांधी ने "सविनय अवज्ञा आंदोलन" छेड़ने की घोषणा कर दी । आंदोलन का प्रारंभ सूरत के बारदोली तालुका से प्रारंभ हो गया, साथ ही महात्मागांधी ने देश की जनता से अपील की कि यह आंदोलन पूरी तरह से शांतिपूर्ण और अनुशासित रहे जिससे आंदोलन का सारा ध्यान बारदोली पर केन्द्रित किया जा सके ।लेकिन जन-आंदोलन के शैलाब को नियंत्रित करना इतना आसान नहीं था, अन्ततः हुआ वही जिसका डर था । 5 फरवरी 1922 ई. भगवान अहीर के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में "चौरी-चौरा

---

43. "मतवाले का मत" सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 152, 10.5.1924
"सर्राफ की नजर से तुमको परख लिया है "

काण्ड" हुआ इसमें शांतिपूर्ण आंदोलन करती हुई भीड़ से पुलिस ने दुर्व्यवहार किया । प्रतिक्रिया स्वरूप जुलूस में शामिल भीड़ ने पुलिस पर हमला कर दिया। इस पर पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी, जिससे सारे लोग उत्तेजित हो गये। उन्होंने थाने में आग लगा दी जिससे 22 पुलिस कर्मी मारे गये । इस घटना से गाँधीजी इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने तत्काल आंदोलन वापस ले लिया ।अचानक गाँधी जी द्वारा आंदोलन वापस लेने पर सारे देश में हताशा और निराशा छा गयी । क्योंकि चौरी- चौरा काण्ड की एक घटना से देश में चल रहे शेष आंदोलनों को काफी आघात पहुँचा । स्वाभाविक भी था क्योंकि किसी भी आंदोलन को खड़ा करने में कितनी जन ऊर्जा की क्षति होती है यह तो आंदोलन कर्ता स्वयं जानते हैं । पर उससे कम क्षति देश को नहीं उठानी पड़ती ।गोरखपुर में चौरी-चौरा की घटना और उसकी चपेट में पूरा देश, यह तो देशवासियों के लिए अन्याय थी ही "मतवाला" इस अन्याय को कैसे सीधे-सीधे स्वीकार कर लेता। इस तरह के किए गए निर्णय पर "मतवाला" काफी क्षुब्ध हुआ।यथा ---"आस्मुद्र हिमाचल के लक्ष-लक्ष कट्टर अहिंसावृत्तियों की परीक्षा का स्थान वही गोरखपुर का "चौरी-चौरा " है !!! असहयोग को वनवास देने के लिए मंथरा की तरह विधाता ने उसी को "अजस पिटारी " बनाकर भेजा है । बेचारे "आनन्द" और "बारदोली" को क्या खबर थी । उनके खरे-खोटे की पहचान की कसौटी सुदूर "चौरी-चौरा" में रखी है । ठीक है । "खेत खाय गदहा और मारा जाय जुलाहा । "[44]

आर्थिक क्षेत्र में बढ़ने वाली खस्ताहाली, जनता की गरीबी, जिस पर विदेशी शासकों का यह रोब-दाब और ऐय्याशी तथा जनता का निरंतर

---

44. "मतवाले का मत "-कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 154, 31.5.1924
"हक तो यूँ है कि हक अदा न हुआ "

किये जाने वाले शोषण से सम्बंधित लेख मतवाला में बार-बार प्रकाशित होता रहा है । इन लेखों के माध्यम से निराला जहाँ एक ओर भारतीयों की आँख खोलते थे वहीं दूसरी ओर इस अन्याय और अत्याचार से प्रतिकार लेने के लिए उनमें शक्ति तथा आशा का संचार करते थे---"तिस पर यदि कभी बूट की ठोकर से किसी भारतवासी की तिल्ली फट जाती है या काले कौवे के धोखे में किसी काले को गोली लग जाती है, तो उसके लिए भी पाँच-दस रूपये खर्च करने पड़ते हैं । ऐसी दशा में यदि भारत की सूखी हड्डियों से कुछ और रक्त नहीं निकाला जायेगा तो बेचारे गोरों का यह खर्च कैसे चलेगा ? [45]

देश में स्वदेशी आंदोलन के चलते व्यापक तौर पर खद्दर का प्रचार प्रसार शुरू हुआ, जगह-जगह विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने धरने दिये गये, विदेशी कपड़ो की होली जली। लेकिन देश के कुछ मोटे व्यापारी जिन्हें खद्दर के व्यापार में घाटा उठाना पड़ता था, विदेशी वस्त्रों के कालाबाजारी से बाज नहीं आते थे । " मतवाला" ने ऐसे धन लोलुप व्यापारियों को व्यंग्य का माध्यम बनाया --" सभी खद्दर का प्रचार चाहते हैं, देश की भलाई के लिए देशी व्यवसाय की उन्नति चाहते हैं, परन्तु अर्थ लोलुप विदेशी वस्तु व्यवसायी "छाँड़ि न सकहिं टेक जो टेकी।" देश रसातल की राह ले, जाति का सत्यानाश हो जाये, धर्म धरती में धँस जाये, मनुष्यत्व की नानी मर जाये, परन्तु ये अभागे देश द्रोही अपने स्वार्थ से तिल भर नहीं डिगेंगे । खुदा जाने विरोधियों से इनका कौन सा गहरा रिश्ता कायम हो गया है।"[46]

---

45. "मतवाले का मत " कौमुदी शिशिर, पृ0 168, 26.7.1924, ।भारी भ्रम ।

46. वही वही पृ0 165, 20.9.1924
" गोरों की काली जाकें "

अंग्रेज स्वतंत्रता संघर्ष में होने वाली आतंकवादी कार्यवाहियों के दमन के लिए भारतीयों के मौलिक अधिकार का दमन करना चाहते थे ।अत: रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन हुआ जिसमें एक साथ दो विधेयक तैयार किये जिसे "रौलट बिल" कहा गया । इस एक्ट के अन्तर्गत विशेष न्यायालयों द्वारा और राजद्रोहात्मक घोषित की गयी सामग्री रखने मात्र पर भी किसी को मुकद्मा चलाये बगैर दो वर्षों तक बंदी बनाये रखा जा सकता था । जिसका मुख्य उद्देश्य युद्धकाल के दौरान नागरिक अधिकारों पर लगाये गए प्रतिबंध को स्थायी बनाना था । कांग्रेस ने इसे काले कानून की संज्ञा दी । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गांधीजी ने 6 अप्रैल 1919 में हड़ताल शुरू कर दी । इस आंदोलन में मुख्यरूप से तीन संगठनों-होमरूल लीग, कुछ अखिल इस्लाम समूह और सत्याग्रह सभी की विशेष भागेदारी रही । गाँधीजी इस काले कानून के विरोध में भारत के तूफानी दौरे पर निकल पड़े । "मतवाला" में भी बाद के दिनों में इस एक्ट के विरोध में जन समर्थन के लिए व्यंग्यात्मक लेख निकले ----" इन अत्याचारों को रोकने का बस वही एक उपाय है एकता, जो तुम्हारे लिए अत्यन्त कठिन है । इसलिए हे भारत के लीडरो, नाहक बाजेला मचाना छोड़कर सद्य प्रसूता नौकरशाही की मंगल कामना में लगो और एक मन प्राण होकर रॉलट एक्ट की वंश वृद्धि के लिए भगवान से प्रार्थना करो ।" [47]

अंग्रेज सरकार राष्ट्रीय आंदोलन की उर्जा को कम करने के लिए नरमपंथियों को कुछ सहूलियतें देकर आंदोलन की तीव्रता को कम करने के लिए अनेक झूठी घोषणाएं करके समझौतावादियों को अपने पक्ष में कर लेते थे जिससे आंदोलन में एक प्रकार से ठहराव आ जाता था । परन्तु बार-बार घोषणाएं

---

47. "मतवाले का मत "-सं. कमेन्दु शिशिर, "पृ0 181, 24.1.1925
"रॉलट बिल का बच्चा ।

करना और फिर अपने वादे से मुकर जाने वाली नियति के चलते जनता धीरे-धीरे इनके इस मंसूबे से परिचित हो चली । तत्कालीन परिस्थितियों में "मतवाला" ने उपनिवेशी सरकार की इस चालबाजी को जनता के सामने व्यंग्य के माध्यम से और भी खुलासा कर दिया ---" कैसी घोषणा और कहाँ की घोषणा? घोषणा की ऐसी तैसी । राजमाता विक्टोरिया के घोषणापत्र में घुन लग गया, तो और घोषणाओं की हस्ती ही क्या है? घोषणाएं तो इस न्याय-दम्भी राज्य की स्वाभाविक घटनाएं हैं ।"[48]

1919 ई. के माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के पुनरीक्षण के लिए 1927 ई. में जान साइन की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया । इस आयोग से भारतीयों की निराशा का प्रमुख कारण इसमें एक भी भारतीय सदस्य का न होना था प्रतिक्रिया स्वरूप सारे देश में इसके खिलाफ जनान्दोलन भड़क उठा । ब्रिटिश सरकार की कुटिल मंशा को हिन्दी पत्रकारिता से जुड़ा बुद्धिजीवी तबका खूब जानता था । साइमन कमीशन की घटना "मतवाला" के विकास यात्रा के लगभग अंतिम दौर की बात है । इस मुद्दे पर "मतवाला" ने लगातार अपनी राय प्रकट की । "मतवाला" ने इस पर जिस ढंग से लेखनी चलाई उसको पढ़कर आज भी "साइमन कमीशन" के उक्त विरोध का, दृश्य हमारी आँखों के सामने जीवंत हो उठता है । "साइमन कमीशन" के विरोध में मतवाला से निकलने वाले ये लेख उसकी देशभक्ति और निष्ठा का प्रमाण है ---" उसी तरह मि. जिन्ना की फटकार सुनकर भी कमीशन की टुम में तेल लगाने के लिए पहले से ही तैयार रहने वाली मीर जाफर दल या चपकनियाँ पँवरिये भी हमारे लिए घृणा के पात्र हैं । इन्हें यहीं छोड़कर हमे अपने ध्येय की ओर अग्रसर होना

---

48. "मतवाले का मत "-सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 202, 23.1.1926
" आग उगलने वाले जन्तु "

चाहिए । देश हमारा साथ देगा, प्रकृति हमारा साथ देगी और ईश्वर का शुभाशिर्वाद हमें प्राप्त होगा।"[49]

इस प्रकार "मतवाला" के लेख तत्कालीन परिस्थितियों को उनकी सम्पूर्ण कुरूपता और सुन्दरता के साथ उभारते हैं । वह चाहे धार्मिक हो, सामाजिक हो अथवा राजनीतिक हो, "मतवाला" किसी भी क्षेत्र में कमजोर नहीं दिखाई पड़ता है । इसके लेखों में प्राय: दो तरह का स्वर सुनाई पड़ता है एक तो सहज सामान्य रिपोर्टिंग की तरह जन सामान्य से संवाद के उद्देश्य से और दूसरे तत्कालीन परिस्थितियों में स्थिति की विषमता पर होने वाले तीखे व्यंग्य प्रहार इन दोनों ही शैलियों में मतवाला अधिकाधिक सफल रहा । परन्तु उसकी सर्वाधिक सफलता का रहस्य समय की नब्ज को पहचानने की क्षमता है जिसके कारण "मतवाला" हिन्दी पत्रकारिता जगत में अपने लघु जीवनकाल में सदा मतवाला ।अलमस्त। ही बना रहा ।

.....0.....

---

49. "मतवाले का मत"-सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 243, 17.12.1927
। मीर जाफर टल ।

अध्याय-दो

## " साम्प्रदायिक समस्या और मतवाला"

"साम्प्रदायिक समस्या और मतवाला"

सन् 1923 ई. में कलकत्ता से "मतवाला" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण घटना थी जो समय और परिस्थितियों की मांग के अनुकूल थी । इसके संपादक मण्डल । लेखक मण्डल । में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेव प्रसाद सेठ, आचार्य शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा (उग्र) और मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव आदि मुख्य थे । मतवाला ने अपने पूरे स्वाभाव में बात कहने के निरालेपन से जैसा व्यक्तित्व अभिव्यक्त किया उससे उसके स्वभाव का सिर्फ निहंग लाडलापन का ही पता नहीं चलता, बल्कि " मैं तो अपने धुन का मतवाला हूँ " का कबीरपन भी मिलता है । वह घोषित करता है कि " सिर्फ मेरी यात्रा का लक्ष्य स्मरण रखियेगा" वह देश की अंदरूनी यात्रा के अनुभवों का चाक्षुज वर्णन करेगा -- उसके बताने का ढंग निराला होगा और वह पूरा निर्भीक रहेगा ।"

यह संकल्प ऐसा है मानों मतवाला अकेले नहीं, अपने युग की अग्रगामी पत्रकारिता की ओर से कर रहा हो । पत्रकारिता के मूल में संभवत: यह भाव-विचार स्थाई होने चाहिए । मतवाला के लेखों में अपने समय के उस एहसास को वाणी मिली जो सिर्फ तथ्यों और विचारों के प्रस्तुतीकरण से संभव नहीं था । इनमें ऐसी अंतर्दृष्टि है, सूझभरी समझ है, जिससे हम आज के समय को भी अधिक प्रमाणिकता से जान पाते हैं ।

इन लेखों में यूँ तो व्यंग्य और विनोद का स्वर सुनाई देता है किन्तु आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों पर बेलौस टिप्पणियाँ

संबंधित लेखकों की प्रगतिशीलता को रेखांकित करती है। इसका तीखापन इस बात का सबूत है कि शासन और संस्थान के बीच तालमेल की कोई विवसता इन लेखकों के सामने नहीं थी, न ही वे आज की तरह शासन और जनता के बीच अलग से कोई तीसरी कड़ी थे। "मतवाला" का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना थी। आज भी उसकी प्रासंगिकता बरकरार है। इसमें प्रकाशित रचनाओं के बीच से गुजरना एक अर्थवान अनुभव लगता है। यह केवल इसलिए नहीं कि इस प्रक्रिया में हम सिर्फ इतिहास का स्पर्श कर रहे होते हैं बल्कि यह आज के सन्दर्भ में अपनी प्रासंगिकता के कारण हमें सोचने समझने के लिए मजबूर कर देता है। इस संदर्भ में उनकी पत्रकारिता उनके लिए सम्पूर्ण राजनीतिक कार्रवाई से कम न थी। जनता के देशी सोच और संवेदन की ठेठ अभिव्यक्ति में, उसकी बोलचाल की कहावतों, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग तथा भाषा के तद्भव और उर्दू का ऐसा साहचर्य अब कम ही देखने को मिलता है।

"मतवाला" के प्रकाशन का उद्देश्य एवं पत्रकारिता धर्म के प्रति इसके लेखकों और सम्पादकों की गहन रूचि की झलक "मतवाला" में प्रकाशित होने वाले तत्कालीन समस्याओं पर गंभीर लेखों से पता चलता है। "मतवाला" तत्कालीन परिस्थितियों की उपज था। अतः देश की जमीन और उसकी समस्याओं से "मतवाला" का घनिष्ठ सम्बंध रहा है। इसीलिए "मतवाला" 1920 के दशक की ज्वलंत समस्या "साम्प्रदायिकता" से कतराता नहीं बल्कि जमकर उसको चुनौती देता है। इसी के चलते "मतवाला" के लेखों में साम्प्रदायिकता की भरमार होगयी है। यद्यपि ये लेख अलग-अलगे मुद्दों पर अलग-अलग समय पर लिखे गये, परन्तु सबको इकट्ठा करने पर साम्प्रदायिकता के प्रति "मतवाला" के एक निजी दृष्टिकोण का विकास स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

### (क) "साम्प्रदायिक प्रश्न पर सैद्धान्तिक और वैचारिक सामग्री"

जिस समय स्वाधीनता आंदोलन क्रमशः अपने लक्ष्य के सन्निकट पहुँच रहा था उसे कमजोर करने की अनेक कोशिशें की गई। कभी बाहरी और कभी भीतरी शक्तियों द्वारा मार्ग में अनेक अवरोध पड़ते रहे। अंग्रेजी सरकार अपना राज कायम रखने के और स्वाधीनता संग्राम को कमजोर बनाने के लिए बल और छल दोनों का सहारा ले रही थी। भारतीय जनता में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने धर्म का इस्तेमाल हथियार के रूप में किया तत्कालीन भारतीय समाज की पृष्ठभूमि

उनके कार्य में सहायक सिद्ध हुई और साम्प्रदायिक ताकतों का उभार हुआ । परिणाम स्वरूप हिन्दुओं-मुसलमानों का वैमनस्य खुलकर सामने आया । दोनों एक दूसरे की अस्मिता समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गये । ऐसा भी नहीं था कि इस संघर्ष में दोनों सम्प्रदायों का सम्पूर्ण वर्ग हिस्सा ले रहा था । दोनों में अभी भी ऐसे लोग थे जो पारस्परिक एकता के महत्व को समझ रहे थे और इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील भी थे ।

दरअसल भारतवर्ष में हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बंध एक दो दिन में नहीं बने थे । उनके सम्बंधों का निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में हुआ था । प्रारम्भिक अवस्था में दोनों कौमें आक्रामक-आक्रांता, शासक-शासित के रूप में सामने आई थी पर कालान्तर में इनके सम्बंध सौहार्दपूर्ण हो गए । अंग्रेजों को प्रारम्भ में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, उसके मूल में हिन्दू-मुस्लिम एकता ही थी । यह एकता कैसे समाप्त हो, इसके लिए अंग्रेज प्रारंभ से ही कारगर उपाय की तलाश में थे । संयोग से उन्हें "हिन्दू महासभा" और " मुस्लिम लीग" के रूप में वह साधन प्राप्त हुआ जिसका प्रयोग वे आसानी से कर रहे थे ।

आजादी के साथ ही साथ साम्प्रदायिक आधार पर भारत विभाजित हुआ भारत और पाकिस्तान दो देश स्वतंत्र अस्तित्व के साथ सामने आये । उस समय अनेक समाजशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, इतिहासकारों और विद्वानों की धारणा थी कि लम्बे समय से चली आ रही साम्प्रदायिक समस्या अब समाप्त हो जायेगी किन्तु धीरे-धीरे यह विश्वास क्षीण होता गया और इतिहास के बदलते हुए घटना चक्रों ने इसे गलत साबित किया । साम्प्रदायिक आधार पर देश का विभाजन और उसके परिणाम स्वरूप फैला हुआ साम्प्रदायिक उन्माद, इतिहास की ऐसी घटनाएं हैं, जिनके प्रभाव से हम आज भी मुक्त नहीं हो सके है।

माना तो यह जा रहा था कि वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ जन साधारण की धार्मिक आस्था कमजोर पड़ जायेगी, पर वह दिनों-दिन दृढ़ होती जा रही है । पहले केवल हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ही साम्प्रदायिक तनाव का सवाल था पर अब साम्प्रदायिकता के अनेक रूप हो गए हैं । अलग प्रदेशों की मांग, बढ़ते हुए भाषाई विवाद, रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद आदि साम्प्रदायिकता के नए रूप हैं ।

साम्प्रदायिकता के बदलते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए उसको समझना नितान्त आवश्यक हो जाता है । साम्प्रदायिकता दरअसल ऐसी विचारधारा है जिसके अन्तर्गत " एक ही धर्म के मानने वालों के सांसारिक हित यानि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक हित एक जैसे होते हैं जो दूसरे धर्म के मानने वालों के सांसारिक हितों से भिन्न तथा परस्पर विरोधी होते हैं ।"

वस्तुत: ऐसा नहीं है। उच्च वर्ग के हिन्दू के हित निम्न वर्ग के हित से मेल नहीं खाते और न ही उच्च वर्ग के मुसलमान के सांसारिक हित यानि, सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक हित निम्न वर्ग के सांसारिक हित से मेल खाते हैं, बल्कि उच्च वर्गीय मुसलमान का जीवन स्तर उच्चवर्गीय हिन्दू के काफी निकट था । इसी प्रकार पंजाबी हिन्दू, बंगाली हिन्दू की अपेक्षा पंजाबी मुसलमान से ज्यादा निकट का सम्बंध रखता था । इस प्रकार देखा जाय तो साम्प्रदायिकता का सैद्धान्तिक तथा वैचारिक आधार मजबूत नहीं है और न ही तार्किक । हिन्दुओं - मुसलमानों में समानता के साथ-साथ कुछ विषमता तो थी लेकिन वह साम्प्रदायिकता का कारण नहीं थी जैसे-- हिन्दू धर्म राजा और प्रजा दोनों का धर्म था, हिन्दू धर्म पहले से स्थापित था । इस्लाम सिर्फ राजा का धर्म था, उन्हें अपना धर्म स्थापित करना था । हिन्दू धर्म अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु होता था । और हिन्दू लोग यही मुसलमानों से भी अपेक्षा करते थे । गाय हिन्दुओं के लिए पूज्य थी लेकिन मुस्लिम गोभक्षक थे । हिन्दू मूर्ति पूजा में विश्वास रखते थे

इस्लाम का सबसे बड़ा कार्य मूर्तिपूजा को नेस्तनाबूत करना था । मुसलमान आक्रमणकारियों ने मूर्ति और मंदिरों को धन-प्राप्ति के लिए तोड़ा और इस्लाम की मुहर लगा दी । आक्रमणकारी कुछ ऐसे कार्य किये जो बाद में चलकर पारस्परिक घृणा उत्पन्न करने में सहायक हुआ जैसे आग लगाकर घरों को लूटना, औरतों से सरेआम बलात्कार करना तथा निरीह बच्चों को मौत के घाट उतार देना । ये कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण हैं जिनका हवालादेकर सम्प्रदायवादी नेता अपनी बात पुष्ट करते थे तथा भोली-भाली जनता को उकसाने में संकोचनहीं करते थे ।

इसलिए इसकी जो नींव रखी गयी, वह बहुत ही कमजोर थी ।परन्तु परिस्थितियों में आने वाले निरन्तर मोड़ ने इस तरह से साम्प्रदायिकता को हवा देना शुरू किया कि बाद के दिनों में इसका इतना अधिक प्रसार हो गया कि बड़े बड़े बौद्धिक तबके के लोग इस प्रवाह में बह चले । इस साम्प्रदायिकता की जमीन पर अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और मानसिक संकीर्णता के सीमेण्ट और बालू के योग से एक ऐसे किले का निर्माण हुआ जो देश विभाजन की कीमत चुकाने के बाद भी आजतक किसी तरह तोड़ा न जा सका ।

"मतवाला" भी इस साम्प्रदायिकता के जहर से न बच सका । वह राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान चलने वाले खिलाफत आंदोलन का समर्थक नहीं था क्योंकि वह उसे संदेह की नजर से देखता था और उसे मुस्लिम साम्प्रदायिकता मानता था । "खिलाफत आंदोलन" के बारे में " मतवाला" की इसी मानसिकता के चलते उसने इस आंदोलन के विरोध स्वरूप व्यंग्यात्मक प्रहार किया-- "मौलाना शौकत अली ने दिल्ली में मुसलमानों से कहा है --" तुम्हारे ऊपर विशेषकर महात्माजी का और साधारतः हिन्दुओं का बड़ा भारी ऋण है" हिन्दुओं का ऋण तो मुसलमान भाइयों ने मुलतान और सहारनपुर में सूद समेत चुका

---

दिया है । रहा महात्मा का ऋण, सो वह भी खिलाफत मसला हल हो जाने के कारण " तमादी" हो चुका है । हाँ इस समय जजीर तुल अरब को सवाल दरपेश है ।"[1]

मतवाला की राय में जो भी हिन्दुओं पर अत्याचार, दमन और शोषण होता था उसके लिए सिर्फ मुसलमान ही दोषी होते थे जिनके खिलाफ मतवाला लिखने में कोई संकोच नहीं करता ---" हिन्दुओं को चाहिए कि ये शीघ्र अपने जातीय संगठन से मुसलमानों को मुँह-तोड़ जबाब दें । हिन्दू जनता को इस बात की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए कि " यदि मुसलमान इस देश में रहना चाहते हैं, तो हमारे छोटे भाई बनकर, सच्ची उदारता और प्रीति के साथ रह सकते हैं -- हमारी मर्जी के खिलाफ उनका रहना असंभव है।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण में मतवाला हिन्दुओं को संगठित होने की सलाह देता है, वह भी मुसलमानों के विरूद्ध , और उनका मुँह तोड़ जबाब देने के लिए। अगर मुसलमान इस देश में रहेंगे तो छोटे भाई बनकर, बड़े बनकर नहीं, यानि प्रथम स्थान हिन्दुओं का दूसरा स्थान मुसलमानों का यानि दोयम दर्जे की नागरिकता के साथ वह इस देश में रह सकते हैं वह भी हमारी मर्जी पर हमारी मर्जी के खिलाफ नहीं । क्या इस कथन में देश के दो नागरिक को समान अधिकार है, अगर नहीं तो मुसलमान अपने आप को क्या मानें । यही प्रवृत्ति आगे चलकर साम्प्रदायिकता का भीषण रूप ले लेती है और कालांतर में साम्प्रदायिक दंगे में बदल जाती है । लगता है कि मुसलमान इस देश के नागरिक नहीं कोई गैर है । यह एक तरह की धमकी है उन्हें आतंकित करने का प्रयास है । यहाँ शत्रुता का

---

1. "मतवाला" 24 नवम्बर, 1923, पृ0 16।
2. "मतवाला" 8 सितम्बर 1923 ई. पृ0 18

भाव दिखाई दे रहा है । इस आधार पर बाद में चलकर पाकिस्तान के रूप में एक अलग राष्ट्र की संकल्पना गलत नहीं कही जा सकती । मतवाला की मुसलमानों के बारे में यह राय हिन्दूवादी पक्ष को उभारता है ।

"मतवाला" का लेखक समूह हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का विरोध करता था परन्तु आर्य समाजी अपने "शुद्धि संस्कारों" से मुसलमानों को हिन्दू बनाये तो उन्हें किसी प्रकार का परहेज नहीं था । "शुद्धि आंदोलन" के चलते मुसलमानों ने एक बार खुरजा के रामानन्द की पिटाई कर दी, इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मतवाला का कहना है कि --" पैंसठ वर्ष के एक बूढ़े मुसलमान को शुद्ध करने के कारण खुरजा के स्वामी रामानंद को मुसलमान गुण्डों ने खूब पीटा है । शायद हिन्दुओं में गुण्डे होते ही नहीं। क्या मुसलमान भाई गुण्डे गढ़ने की मशीन कुछ दिनों के लिए हिन्दुओं को मँगनी नहीं दे सकते?"[3] मतवाला की राय में मुसलमान गुण्डे होते हैं, उन पर लाँछन लगाने वाली बात है। क्या गुण्डे हिन्दुओं में नहीं होते? मुसलमानों के प्रति मतवाला की धारणा गलत एवं उपेक्षापूर्ण है इसमें संदेह नहीं ।

मुसलमानों को गुण्डा, बदमाश बताकर हिन्दुओ का विरोधी सिद्ध करना मतवाला की अपनी विशेषता है । इसके पीछे मतवाला की कौन सी मंशा छिपी है यह आगे चलकर स्पष्ट होगा । मुसलमानों को क्रूर, अत्याचारी, धार्मिक उन्मादी, निर्दयी तथा देश द्रोही बताकर मतवाला अपने ऊपर स्वत: प्रश्न चिह्न लगाता है । पत्र-पत्रकारिता अथवा बुद्धिजीवी वर्ग की सोच से परे उसके विचार चले जाते हैं । सीधे-सीधे किसी पर आरोप-प्रत्यारोप लगाना मतवाला की ज्यादती है । इसकी तुलना में क्या ये समस्त दुर्गुण जो मुसलमानों में गिनाये गए हैं हिन्दुओं

---

3. "मतवाला" 24 नवम्बर, 1923 ई. पृ0 16।

में नहीं हैं ? निश्चित रूप से है, जिसको मतवाला छुपाता है । मुसलमान आदमी नहीं हैं क्या कि जहाँ मौका मिला तुरन्त खून कर दिये ?

"मतवाला" में साम्प्रदायिकता से सम्बंधित जितने लेख लिखे गये उनमें से अधिकांश हिन्दुओं के समर्थन में और मुसलमानों के खिलाफ लिखे गये । मतवाला हिन्दुओं को शांत स्वभाव, दयालु प्रवृत्ति, उदारमन और सुलझे दिमाग का आदमी मानता है । परन्तु मुसलमानों को क्रूर, अत्याचारी, देश द्रोही, धार्मिक उन्मादी और निर्दयी प्रकृति का व्यक्ति मानताहै । मतवाला के अनुसार साम्प्रदायिक दंगे और खून-खराबा जहाँ हिन्दू धर्म के विपरीत और पाप समझा जाता है । मुसलमानों को जहाँ कही भी मौका मिलता है वहाँ वे हिन्दुओं का निर्दयता पूर्वक दमन करने पर उतारु हो जाते हैं, परन्तु हिन्दू अपनी शांति प्रकृति के कारण चुपचाप निरीह भाव से यह सब देखते रहते हैं । यही कारण है कि हिन्दुओं के त्यौहार प्राय: शांतिपूर्ण निकल जाया करते हैं परन्तु मुसलमानों के मुहर्रम और बकरीद के समय देश में कहीं न कहीं दंगे भड़क उठते हैं । इसका कारण बताते हुए "मतवाला" कहता है कि ---" हिन्दू खून के प्यासे नहीं हैं, उनका खून सफेद नहीं हुआ है, उनकी प्रेम और दया से भरी आँखों में जल्दी खून नहीं उतरता, उनके सिर पर प्रतिहिंसा का खून जल्दी सवार नहीं होता । इसीलिए मुसलमान उनका खून पी जाते हैं और ये आँसू पीकर रह जाते हैं ।"[4]

"मतवाला" अपने लक्ष्य को भूलता नहीं है वह अपने लक्ष्य पर अडिग होकर काम करता रहता है । मतवाला हिन्दूवादी स्वर को उभारता है, उसको मुसलमानों के विरोध में ज्यादा संगठित होने की सलाह देता है । साम्प्रदायिकता

---

4. "मतवाला" 8 सितम्बर, 1923, पृ0 18

के लिए हिन्दुओं को उतना जिम्मेदार नहीं मानता जितना कि मुसलमानों को। मतवाला यह आरोप लगाता है कि हिन्दू कायर होते हैं और मुसलमान धर्मान्ध। साम्प्रदायिक दंगे धर्मान्धता का परिणाम होते हैं। इसमें यानि हिन्दुओं और मुसलमानों में ज्यादा दोषी कौन है, मतवाला की कुटिल मंशा स्पष्ट उजागर हो जाती है। मतवाला की राय में मुसलमानों की तरह हिन्दू भी धर्म और मान के लिए मरना सीख लेंगे तभी मुस्लिम एकता कायम होगी। हिन्दुओं को मुसलमानों के प्रतिपक्ष के रूप में स्थापित करना मतवाला की कुटिल मंशा है जिसको पूर्ण करता है। वह हिन्दुओं को क्रांतिकारी और कट्टर बनाकर हिन्दुओं की शक्ति में वृद्धि का आकांक्षी है जिसके लिए अपनी ओर से पुरजोर कोशिश करता है। मतवाला यह स्वीकार करता है कि इन साम्प्रदायिक दंगों के पीछे धर्मान्ध लोगों का हाथ रहा है, इसमें किसी संगठित बदमाश दल की कोई भूमिका नहीं होती, बल्कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के मध्य निरंतर बढ़ती शक्ति ने यह परिस्थिति उत्पन्न की है ---" हिन्दुओं का दोष कायरता है और मुसलमानों का धर्मान्धता। जब मुसलमानों की तरह हिन्दू भी धर्म और मान के लिए मरना सीख लेंगे, एकता तभी स्थायी हो सकेगी।"[5]

"मतवाला" हिन्दू और मुसलमान को दो सर्वथा अलग-अलग जाति समझता है जिसमें कभी मेल नहीं हो सकता। इसलिए मतवाला हिन्दू और मुसलमान एकता के प्रयास को न सिर्फ झूठा ही समझता है बल्कि असंभव मानता है। इसके पीछे जो भी कारण रहे हो परन्तु इतना तो अवश्य रहा कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों के अधिकाधिक अत्याचार से "मतवाला" का मन मुसलमानों से भर चुका था इसीलिए उसने इस्लाम के खिलाफ इस तरह की आग उगली ---" जो लोग

---

5. "मतवाला", 19 जनवरी 1924 ई. पृ0 339

प्रेम से मुसलमानों को जीतना चाहते हैं ये इस दुनियां के जीवों में गिने जाने योग्य नहीं हैं - वे उस लोक के निवासी हैं, जहाँ सत्य की चाँदनी में दया के शीतल छाया कुंज में, प्रेम और शान्ति लिपटकर सो रहे हैं।"[6]

इसी मानसिकता के चलते "मतवाला" का विश्वास भारतीय काग्रेसी नेताओं से उठ गया। नेताओं द्वारा किये जाने वाले हिन्दू-मुस्लिम मेल-मिलाप को एक फरेब मानता है। इसे काग्रेसी नेताओं की तुष्टिकरण नीति पसंद नहीं जो वोट की राजनीति के कारण हिन्दुत्व के प्रति विशेष रूप से कटु हैं परन्तु वही मुसलमानों की ज्यादतियों के प्रति मूक दर्शक बने रहते हैं "मतवाला" उनके प्रति जरा भी सहिष्णु नहीं है। वह हिन्दुओं का हित चाहता है। अगर उसके लिए मुसलमान आड़े आते हैं तो उन्हें बर्दाश्त नहीं करता। खुद हिन्दुओं में भी जो सेक्युलर बनने का प्रयास करता है जैसे हिन्दू-मुस्लिम एकता चाहता है, वे लोग चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम उन्हें फटकार लगाने में देर नहीं करता।

वास्तव में "मतवाला" हिन्दुओं का हिन्दू है इसमें कोई सन्देह नहीं। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल विरोधी है। यह विरोध बार-बार उसके लेखन में उभर कर बिल्कुल स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वह हिन्दू - मुस्लिम एकता को मान्यता देने व दिलाने वाले नेताओं मौलाना मुहम्मद अली, डा. किचलू, हकीम अजमल खाँ, हसरत मोहानी, सेठ छोटानी और मौलाना सोमानी आदि के प्रस्तावों को ज्यादा तरजीह नहीं देता। वह काग्रेस और समझौतावादी नेताओं की इस तुष्टीकरण नीति की पोल खोल देता है। स्वराज्य दल ने अधिक भारतीय हिन्दू मुस्लिम समझौते के काग्रेस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें देशबन्धु, चितरंजन दास मुख्य भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने बंगाल के हिन्दुओं की तरफ से इस आशय का प्रस्ताव भी रखा। परन्तु मतवाला को देशबंधु का प्रयास रूचा नहीं। वह इस

---

6. "मतवाला" 8 सितम्बर, 1923, पृ0 18

समझौते के प्रस्ताव को सम्पूर्ण बंगाल की हिन्दू जनता का प्रस्ताव नहीं मानता बल्कि स्वयं देशबन्धु के स्वराज दल का व्यक्तिगत प्रस्ताव मानता है ।इस बात के लिए "मतवाला" ने देशबन्धु की खूब खिंचाई की , यहाँ तक कि एक हिन्दू विश्वासघाती के रूप में उनकी छवि उभारी ---" क्या आप को भय था कि बंगाल के हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों के साथ बेईमानी करेंगे? अथवा स्वराज दल की ओर मुसलमान-संसार की हार्दिक सहानुभूति आकर्षित करने के लिए ही आप को हिन्दुओं के अधिकारों पर हमला करना पड़ा? और नहीं तो माजरा क्या है ?"[7]

"मतवाला" को दाढ़ी और चुटिया का मेल नहीं भाया, "मतवाला" हिन्दू और मुसलमान को पूरब और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, सूरज और चाँद प्रभात और संध्या, चुटिया और दाढ़ी, कपूर और हींग, खेत और रेत, धोती और पायजामा आदि जितने भी विरोधाभास पूर्ण उपमाएं हो सकती है वह सब मानता है। अत: वह इन दोनों की एकता के लिए कदापि तैयार नहीं हो सकता । मुसलमानों द्वारा अरब आदि मुस्लिम देशों के समर्थन को "मतवाला" देश के हित में अच्छा नहीं मानता । वह मुसलमानों को एक स्वप्नवासी करार देता है जो रहते तो हिन्दुस्तान में हैं परन्तु सपने देखते हैं अरब देश के । इसी बात को और अधिक पुष्ट करने के लिए "मतवाला" ने अकबर इलाहाबादी के इस शेर को उद्धृत किया है ---

" पेट मसरूफ है कलकीं में ।
दिल है ईरान और टर्की में ।।,

इस प्रकार मतवाला बार-बार कांग्रेसियों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता

---

7. "मतवाला" 12 जनवरी 1924, पृ0 संख्या-315

की दुहाई देते रहने से व्यक्ति उठता है और वह कांग्रेसियों द्वारा दी हुई एकता सम्बंधी उपमाओं में ही ऐसी दरार पैदा कर देता है जो कभी पाटी नहीं जा सकती है यह भी व्यंग्य का अजब नमूना है " बच्चों की राय में हिन्दू और मुसलमान भारतमाता की दो आँखे हैं । किन्तु बैठी हुई । एक ही डाल के दो फूल है ।किन्तु मुरझाये हुए । -राष्ट्र की दो भुजाएं हैं ।किन्तु पक्षाघात पीड़ित । स्वराज रथ के दो चक्के हैं । किन्तु बिना हाल के ।।- स्वतंत्रता की इमारत के दो खम्भे हैं ।किन्तु बिना थली और माया के ।।[8]

यानि जैसे भी हो हिन्दू-मुस्लिम मेल वह बर्दाश्त नहीं करना चाहता। हिन्दू-मुस्लिम मेल का क्या यह अर्थ नहीं कि दोनों समान भाव से रहेंगे, समान अधिकार प्राप्त कर लेगें । अगर ऐसा है तो मतवाला क्यों चाहेगा कि यह मेल हो । वह पहले ही घोषित कर चुका है । मतवाला अपने लक्ष्य से हट जायेगा और अपने कर्तव्यों का सही निर्वाह नहीं कर पायेगा। इसलिए वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का विरोधी है । इसलिए वह दोनों की विषमता पर विशेष ध्यान देता है। "मतवाला" जहाँ मुसलमानों की इस दकियानूसी प्रवृत्ति का उद्घाटन करता है वहीं दूसरी तरफ हिन्दुओं के संयम और मर्यादा की दाद देता है । वह ऐसे लोग की कुटिल मंशा पर भी चोट करता है जो हिन्दुओं के नैतिक आदर्शवादी परम्परा से परिचित हुए बिना ही हिन्दू संगठनों को मुसलमानों के लिए घातक समझते हैं। वह ऐसे व्यक्तियों को ओछी मानसिकता वाला मानता है क्योंकि हिन्दुओं में जो सौहार्द और "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना पाई जाती है वह इस जाति की शोभा हैं । हिन्दू-मुसलमान भाइयों के साथ मिल-जुलकर रहने में ही अपना और देश का कल्याण मानते हैं । इस ध्येय की पूर्ति के लिए हिन्दू किसी के अधिकारों

---

8. "मतवाला" 8 सितम्बर 1923 ई. पृ0 18

को हड़पने में न तो वह वीरता का अनुभव करता है और न ही किसी धर्म का अपमान करना अपना दायित्व समझता है । हिन्दुओं के पक्ष में इतना कुछ कहने के बाद मतवाला पुन: मुसलमानों के सामाजिक और धार्मिक व्यवहार के प्रति वह पूर्णरूप से शंकालु दिखाई पड़ता है । वह मुसलमानों को हिन्दुओं के इन्हीं सब गुणों के विपरीत देखता है । "मतवाला" के अनुसार मुसलमान "काफिरों" और बुतपरस्तों ( मूर्तिपूजक) से घृणा करते हैं । वह हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिए तरह-तरह का अत्याचार करते हैं । इन सारी धर्मान्ध कार्यवाहियों के लिए "मतवाला" मुसलमान नेताओं को दोषी ठहराता है --क्योंकि" मुसलमान भाइयों का आतंक मुसलमान नेताओं पर भी छा गया है । वे इस मामले में चूं तक करना नहीं चाहते । अगर चाहते भी हैं तो "काफिर" करार दिये जाने के डर से चुप हैं ।"[9]

"मतवाला" मुस्लिम कट्टरता का एक कारण हिन्दू जागरण को भी मानता है परन्तु उसकी नजर में हिन्दू जागरण कोई बुराई तो नहीं क्योंकि हिन्दू किसी दूसरे समुदाय का अहित नहीं करता है । हाँ इतना अवश्य है कि वह सैकड़ों वर्षों से अपनी संकीर्णता और जड़ता को छोड़कर अपनेही धर्म के अछूत, पददलित भाइयों की स्थिति को सुधारना चाहता है जो शायद मुसलमानों को मंजूर नहीं। क्योंकि मुसलमान हिन्दुओं की इसी संकीर्ण मानसिकता का लाभ उठाकर हिन्दू छुटभैयों को ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ करके लालच एवं भय दिखाकर धर्म परिवर्तन द्वारा निरन्तर इस्लाम की संख्या बढ़ा रहा था जो अब हिन्दुओं के इस जागरण अभियान से बाधित हो गया । अत: मुसलमानों की ईर्ष्या धीरे-धीरे हिन्दुओं के प्रति बढ़ती गयी अंतत: जिसकी परिणति भयंकर नरसंहार में हुई । अत: "मतवाला" मुसलमानों के इसी अत्याचार का बार-बार बयान करता है ---

---

9. "मतवाले का मत " -सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 8।

" फिर क्या था दाढ़ी उछलकर चोटी पर चढ़ बैठी । देखते-देखते सैकड़ों सिर धड़ से अलग कर दिये गये, सैकड़ों स्त्रियों का सतीत्व नष्ट कर दिया, "तबलीग" के नाम पर सैकड़ों बच्चों की मूत्रेन्द्रियों पर निर्दयता पूर्वक छुरियां चला दी गई। बेचारी गायों की गर्दनें नापी जाने लगीं ।"[10]

वास्तव में मतवाला की मुख्य समस्या हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं थी बल्कि मुसलमानों के प्रभाव को कम करने के लिए "हिन्दू जागरण " था । जिससे हिन्दू जहाँ एक ओर मुसलमानों के लिए चुनौती बनकर खड़ा हो सके वहीं दूसरी ओर हिन्दुत्व का अधिकाधिक प्रचार हो सके । यद्यपि इसके लिए "मतवाला" का विचार देश की शांति भंग करना नहीं था बल्कि मुसलमानों के अत्याचार का मुँह तोड़ जबाब देना था । इसीलिए मतवाला कांग्रेस द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास को सही नहीं मानता । उसको कांग्रेस के मुसलमान समर्थक होने पर बड़ा एतराज था । इसीलिए मतवाला ने कांग्रेसी नेताओं पर करारा व्यंग्य किया ---

"कांग्रेस मारो मौलाना के " घर की मुर्गी" प्यारी है
उसने अण्डे तीन दिये हैं बड़े-बड़े बलिहारी है ।

नेहरू किचलू, पुरूषोत्तम जी तीनों अण्डे सेते हैं।
देखें कब तक भारत में ये अण्डे बच्चे देते हैं ।।"[11]

चूँकि ये तीनों नेता हिन्दू-मुस्लिम एकता लाकर स्वराज की प्राप्ति करना चाहते थे,पर मतवाला को यह पसन्द नहीं था इसीलिए इतनी कटु आलोचना की है । मतवाला कोई तार्किक आधार प्रस्तुत नहीं करता कि क्यों हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं होनी चाहिए, जो भी आधार वह प्रस्तुत करता है वह निराधार ही नहीं

---

10. "मतवाले का मत "-सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 84
11. "मतवाला" 27 अक्टूबर 1923, पृ0 105

भ्रांतिपूर्ण है । हिन्दुओं को बार-बार उकसाता रहता है । जिस देश और समाज में साम्प्रदायिकता जैसी महामारी फैली हो वहाँ किसी भी सम्प्रदाय के खिलाफ आग उगलना खतरे को जन्म देना होता है ।ये खतरे दोनों तरफ से भी हो सकते हैं "मतवाला" के लेखों में हिन्दुओं के इस सहज और शांतिपूर्ण व्यवहार के लिए उन्हें बार-बार कोसा गया, उनकी निन्दा की गई । उनमें मुसलमानों के खिलाफ उठ खड़े होने के लिए आत्मबोध और गौरव का भाव जगाया गया परन्तु हिन्दू अपनी गऊमाता की तरह इतने सिधुवा निकले कि कान पर जूँ ही नहीं रेंगती । बेचारे क्या करते, सरेआम पिटते रहे, लुटते रहे, मंदिर जलते रहे, मूर्तियाँ टूटती रही, उनकी स्त्रियां बेइज्जत होती रही, परन्तु वे सन्यासी भाव से जगत के इन प्रपंचों से डेढ़ हाथ दूर बने रहे । यद्यपि हिन्दू अपने को बड़े-बड़े महापुरूषों की संताने बताती रहीं, परन्तु समय पड़ने पर गीदड़ों से कम भगोड़े नहीं निकले । हिन्दू अपना जातीय संगठन बनाता ही रह गया, जबकि उनके छोटे भाइयों ने उन्हें अपने धार्मिक संगठन का मजा कई बार चखा दिया । ये ठहरे पूरे बेशर्म यदि इनमें किसी प्रकार की शर्म होती तो ये इस तरह रोज लतियाए न जाते । बल्कि "सौ सुनार की और एक लुहार की " वाली कहावत चरितार्थ कर देते । मगर अफशोस! ऐसा कुछ न हुआ, इसी बात के लिए हिन्दुओं को लताड़ता हुआ "मतवाला" का व्यंग्य यूँ है ---"हिन्दू क्या है मोम के पुतले हैं, तनाह की बत्ती हैं, कच्चे धागे हैं, शीशे के खिलौने हैं । जब जो चाहे खाक में मिला दे, या चकनाचूर कर डाले । छि: ऐसे हिन्दुओं !?! को क्या कहीं चुल्लू भर पानी भी नहीं मिलाता?"[12]

हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ जितना भड़काया गया है या उनकी तुलना में उन्हें जितना कोसा गया है उसकी अंतिम परिणति साम्प्रदायिक दंगों में

---

12. "मतवाला" -15 सितम्बर 1923 ई. पृ0 28

होना कोई बड़ी बात नहीं और यही कारण है कि " 1923 में अमृतसर, मुल्तान, मेरठ, मुरादाबाद, रायबेरेली, सहारनपुर, और अन्य शहरों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए । 1924 में दिल्ली, कोहात, गुलबर्गा, जबलपुर, नागपुर, लाहौर, लखनऊ और इलाहाबाद में दंगे हुए । उनमें सितम्बर 1924 में कोहाट दंगा सबसे भयंकर था । 1925 में दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर, इलाहाबाद में बड़े दंगे हुए । सरकारी हिसाब के अनुसार अप्रैल 1926 से लेकर मार्च 1926 से लेकर मार्च 1927 तक हिन्दुस्तान में 40 बड़े दंगे हुए जिनमें 197 आदमी मारे गये और 1998 घायल हुए । इतने भयंकर साम्प्रदायिक दंगे भारतवर्ष के इतिहास में कभी नहीं हुए थे ।"

"मतवाला" ने हिन्दुओं की कायरता की खूब खिल्ली उड़ाई । वह आज के इस कायर हिन्दू जाति को हिन्दू नहीं मानता बल्कि इसे हिन्दू की दुम कहता है । वह इन हिन्दुओं को उनके पूर्वजों महाराणा प्रताप, शिवाजी और गुरू गोविन्द सिंह के रूप में देखना चाहता है । वह हिन्दुओं की एक मात्र निशानी अब चुटिया को ही मानता है। जिसको कटवाने में कुछ लोग आज भी लगे हुए हैं । "मतवाला" के लिए हिन्दू भले ही संख्या में कम रहे परन्तु जो भी रहे वे बीर और साहसी तथा शत्रु के खिलाफ एकदम से उठ खड़े होने वाले थे । वे इक्कीस करोड़ की जगह उसकी एक तिहाई सात करोड़ हों परन्तु वक्त पर काम आने वाले हों तभी सच्चे हिन्दू कहला सकते हैं । इसी भावना को व्यक्त करता हुआ मतवाला ने हिन्दुओं पर व्यंग्य किया ---" अब तो केवल यही चुटिया ही हिन्दुत्व की निशानी रह गई है । अगर इस चुटिया की भी लाज नहीं रख सके तो हिन्दू शब्द को निरर्थक और अपवित्र करने वाले ये इक्कीस करोड़ कायर कपूत रहे या ना रहे दोनों बराबर है । बहुवंश से निरवंश ही अच्छा ।"[13]

---

13. "मतवाला"- 5 सितम्बर 1923, पृ0 4

"मतवाला" ने हिन्दू जाति को इतना लथेड़ा है, उसका मतलब यह नहीं कि वह हिन्दुओं के प्रति चिंतित नहीं है, अथवा वह हिन्दूधर्म की सलामती के लिए कामना नहीं करता । उसकी चिंता का विषय मुसलमानों द्वारा धर्म-परिवर्तन और अत्याचार के कारण निरन्तर हिन्दुओं की कम होती जनसंख्या है । वह ऐनकेनप्रकारेण हिन्दुओं की संख्या बढ़ाने के पक्ष में हैं इसके लिए वह सनातन धर्म पर चोट करता हुआ कहता है कि ---"हिन्दुओं की संख्या उत्तरोत्तर घटती जा रही है, तो घटने दीजिए, सनातन धर्म को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा कीजिए । क्योंकि -

" ईमान सलामत है तो आस है खुदा से
मरती है अगर जाति तोमर जाय बला से ।"[14]

"मतवाला" के लिए स्वराज का प्रश्न बाद में आता है परन्तु पहला प्रश्न मुसलमानों का अत्याचार है । अत: स्वराज प्राप्त करने से पहले देश में अमन चैन स्थापित करना अधिक आवश्यक है । अगर इसी तरह मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किया तो स्वराज का मूल्य क्या रहेगा ? क्योंकि स्वराज इसीलिए प्रत्येक नागरिक चाहता है कि वह न्यायपूर्वक अपने अधिकारों का उपयोग कर सके परन्तु यहाँ तो स्थिति उलटी है । बाहर वाले से लड़कर क्या होगा जब स्वयं अपने घर में ही कोई व्यक्ति दबाया जाय । स्वराज के दीवाने नेताओं के लिए भले ही इस स्वराज का कोई मूल्य हो परन्तु जरा उन हिन्दुओं से पूछो जिनके जानमाल का खतरा हर साल सिर पर सवार हो जाता है । इसलिए रावण से टकराने से पहले बंदर और भालू ही आपस में निपट लें यही अच्छा होगा । हिन्दुओं को मुसलमानों को अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि

---

14. "मतवाला" 16 अगस्त 1923 , पृ0 3

भारत वर्ष हिन्दुओं का देश है अत: इसमें उनके शत्रु सदा बसे नहीं रह सकते इसलिए यदि मुसलमान भारत में रहना चाहते हैं तो हिन्दुओं के साथ मिल जुलकर रहें । नहीं तो हिन्दुओं को स्वराज का कोई मोह नहीं वे पहले इन्हीं भीतरघातियों से निपटने का प्रयास करेंगे ।-----" हमें मालूम हो गया है कि नौकरशाही से पहले हमें नादिरशाही का मुकाबला करना पड़ेगा, कुछ चिंता नहीं । पहले घर का झमेला तो मिटे फिर बाहर का बखेड़ा तय होता रहेगा। बाहरी अपमान तो किसी तरह सहा ही जा सकता है, पर घरेलू अपमान बर्दाश्त से बाहर होता है ।"[15]

उपर्युक्त उद्धरण में नौकरशाही से पहले नादिरशाही का मुकाबला करने का मतवाला आह्वाहन करता है । यह देश के आंतरिक विभाजन का सबसे बड़ा प्रमाण है । इस बुनियाद पर देश की स्वाधीनता की प्राप्ति संभव है? घर का झमेला यानि हिन्दू-मुस्लिम झमेला समाप्त करके ही बाहर का झमेला समाप्त होगा । यह विचार कतई देश की स्वाधीनता के लिए सहायक नहीं हो सकते थे । अंतत: वही हुआ कालांतर में चलकर हिन्दू-मुस्लिम झमेला समाप्त करने हेतु पाकिस्तान एक अलग राष्ट्र के रूप में आया पर फिर भी हिन्दू-मुस्लिम झमेला समाप्त क्यों नहीं हुआ? इसलिए इन विचारों में शुरू से ही खोट थी । मतवाला की राय में मुसलमान भीतरघाती, नादिरशाही तथा हिन्दुओं को अपमानित करने वाले हैं और हिन्दूबुजदिल, कायर, भीरू इसलिए हैं कि मुसलमानों का जमकर विरोध नहीं करते, उनपर हावी नहीं हो पाते । "मतवाला" बार-बार यह आह्वान करता है कि हिन्दू- संगठित होकर मुसलमानों का मुँह तोड़ जबाब दें । सच तो यह है यहाँ विचार ही साम्प्रदायिक है । जानबूझ कर एक संप्रदाय को दूसरे संप्रदाय के खिलाफ उकसाया जाता है और हिंसा केलिए प्रेरित किया जाता है, अगर उसकी अंतिम परिणति साम्प्रदायिक दंगे का रूप लेते हैं तो निश्चित रूप से उसके जिम्मेदार उकसाने वाले प्रेरणा स्त्रोत ही है ।

---

15. "मतवाला" 8 सितम्बर 1923 ई० पृ० 19

इसके मूल में यह धारणा काम कर रही है कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का देश है, उनका अपना देश है और उसमें शत्रु सदा बसे नहीं रह सकते अगर रह भी सकते हैं तो मिलजुल कर यानि हिन्दुओं की मर्जी पर । यहाँ क्या मुसलमानों से देश की नागरिकता छीनने जैसी बात नहीं है । इस देश का समान नागरिक अगर उससे उसका हक छीना जायेगा तो साम्प्रदायिक दंगे नहीं होंगे ?

"मतवाला" मुसलमानों द्वारा निरन्तर अत्याचार और हिन्दुओं की साँप-सूँघ गया वाली प्रवृत्ति पर बहुत खीजता है । पर लाख समझाने पर भी हिन्दू अपनी बुझदिली छोड़ने को तैयार नहीं इसलिए अत्याचार सहना उनकी नियति बन गई है । धीरे-धीरे हक छीना जायेगा तो क्या वह हिंसा पर नहीं उतर सकता ? मतवाला हिन्दुओं को कोसता है --" मार खाने से हिन्दू मजबूत होंगे और मालवीय जी महाराज, जब हिन्दू मजबूत हो जायेंगे तो मुसलमान खवाहमख्वाह उनसे मेल कर लेंगे । इसीलिए हिन्दुओं का पीटा जाना कल्याणकर है । डटे रहो वीरों ! खूब मार खाते जाओ। अब देर नहीं है । शीघ्र ही मुसलमान तुम्हारी मजबूती देखकर दंग हो जायेंगे और अपना "अमामा" तुम्हारे पैरों पर रख देंगे ।"[16]

"मतवाला" ऐसे कांग्रेसियों को देश को गुमराह करने वाला कहता है जो कि इन दोनों के मध्य वास्तविक माहौल तो नहीं कायम करना चाहते बल्कि इनके वैमनस्य को केवल कुछदेर के लिए ढक देना चाहते हैं । अत: मतवाला का तर्क है कि ---" आँखों पर कीच का लेप चढ़ाने से क्या भीतर की आग नहीं धधकती ? जब तक दोनों तरफ का भ्रम दूर करके पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सच्चाई के साथ समझौता न कराया जायेगा तब तक वर्तमान लक्षण यही बतलाता है कि किसी प्रकार राजनैतिक आंदोलन सफल नहीं हो सकता ।"[17]

---

16. "मतवाला"- 3 मई 1924, पृ0 657
17. "मतवाला"- 17 नवम्बर 1923 ई. पृ0 145

"मतवाला" हिन्दू मुसलमान के बीच एकता के प्रयास के प्रति इसलिए भी शंकालु है कि हिन्दू तो ठहरे सीधे-साधे जो अपने नेताओं का कहना आसानी से मान लेते हैं । साथ ही बचन भंग हिन्दू धर्म के प्रतिकूल है । परन्तु मुसलमान भाई अपनी धार्मिक कट्टरता और उलेमाओं के प्रभाव वश कभी भी समझौते की धज्जियां उड़ाकर साम्प्रदायिक सैलाब में बह सकते हैं इसका प्रमाण मुसलमानों द्वारा समय-समय पर भड़काये जाने वाले दंगे हैं । अत: "मतवाला" अपनी इस शंका को इन शब्दों में प्रकट करता है --" मुसलमानों पर उलेमाओं का पूर्ण प्रभाव है। इसलिए बड़ी भारी आशंका इस बात की है कि कहीं दोनों शर्त नामों पर मत संग्रह करने के बाद एकता का प्रश्न और भी उलझनदार न बन जाय । उस समय राष्ट्रीय समझौते के पंक्षी पंख फड़फड़ाते हुए घबराकर कहेंगे कि वह " टूल्हे की बंगालिन चाची" "ख्वाहमख्वाह बीबी "कहाँ है ।"[18]

इस तरह की आशंका होने के बावजूद मतवाला एकता के प्रयास को पीछे ढकेलने का समर्थन नहीं करता बशर्ते वह प्रयास केवल कागजी न हो बल्कि उसका एक ठोस सामाजिक आधार होना चाहिए।साथ ही अपनी सहृदयता और उदारता द्वारा मुसलमान भाइयों को भी प्रभावित करना चाहिए । क्योंकि यदि ऐसा न हुआ तो कांग्रेस में मतभेद बढ़ जायेगा जो स्वतंत्रता आंदोलन के लिए घातक होगा । परन्तु इसके लिए "मतवाला" एक शर्त रखता है कि यदि मुसलमान भाई स्वराज दल के समझौते को हठ पूर्वक मनवाने का प्रयास करेंगे तो विरोध को रोका नहीं जा सकता । परिणाम स्वरूप कांग्रेस की सफलता खटाई में पड़ जायेगी । इसके अलावा "मतवाला" कांग्रेसी नेताओं के उपरी तौर पर हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए समर्पित छवि और भीतर - भीतर दिल में छुपे खोट को उद्घाटित कर कर देता है । ---" परन्तु यदि वे मेल कराना चाहते हैं तो उन्हें पूरी संजीदगी

---

18. "मतवाला" 12 जनवरी, 1924 ई. पृ 315

के साथ इस बात की जाँच करनी होगी, कि इस विवाद का मूल क्या है और किसने पहले उसका सूत्रपात किया है । यदि हिन्दू मुसलमानों के सौभाग्य से उन्हें इस बात का ठीक-ठीक पता लग जाय तो उन्हें इंसाफ और दृढ़ता से काम लेकर इस कलह की जड़ को ही मिटाने की चेष्टा करनी चाहिए।"[19]

"मतवाला" इतना कुछ हिन्दू धर्म का समर्थन करने के साथ-साथ उसके भीतर फैली बुराइयों, रूढ़िवादिता, धर्मान्धता और पोंगापेथियों के लिए वह हिन्दुओं को भी नहीं छोड़ता । वह हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए हिन्दुओं के जागरण के लिए इन सभी बुराइयों को दूर करना आवश्यक मानता है । "मतवाला" का लेखक समुदाय महंतो, मठाधीशों और धर्मोपदेशकों के खिलाफ है । इन्होंने हिन्दू धर्म के भीतर फैले हुए जातिवाद के विष को हिन्दू धर्म के विनाश का सबसे प्रमुख कारण मानते हैं । इसीलिए उन्होंने काशी के पंडितो की खूब खिंचाई की ---" काशी के पंडितो के जाते ही अनूप शहर में एक अनूप बात हो गई । वहाँ रामलीला में चमार आदि भी शामिल हुए थे। यहाँ तक कि चमारों ने प्रसाद भी चढ़ाया था । अब काशी के पंडितों को चाहिए कि शबरी और निषाद के निष्तारक भगवान रामचन्द्र का ही वायकाट कर दें । नहीं तो बप्पा रे बप्पा । अब रामचन्द्र के परिवार में भी उनका और चमारों का एक ही दरजा हुआ चाहता है ।"[20]

यह तो हुई हिन्दूधर्म के ठेकेदार काशी के पंडितों की खिंचाई । परन्तु आगे बढ़ने पर "मतवाला" की पैनी दृष्टि से गया के पण्डे भी नहीं बच पाते हैं क्योंकि गया के पण्डे लूट-खसोट के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध हैं । इनको लक्ष्य करके "मतवाला" में एक व्यंग्य कविता प्रकासित हुई जिसकी दो पंक्तियाँ इस

---

19. "मतवाले का मत "- सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 97
20. "मतवाला " 3 नवम्बर 1923 ई. पृ0 115

प्रकार हैं ---" किये फरहार पर मुण्डे" पड़े गया के हैं
गन्दे भाव भरे जैसे काशी के पनाले हैं ।"[21]

इसी तरह "मतवाला" ने छुआछुत के बीमारी के कारण हिन्दू धर्म के प्रधान महाधीश्वर जगद्गुरू शंकराचार्य को भी व्यंग्य का माध्यम बनाया और हिन्दू धर्म की खिल्ली उड़ाई ---" महामान्य जगद्गुरूओं की स्वागत सभा के एक कोने में यदि खटिक खड़े हो जाते तो हिन्दू धर्म की नाक जड़ से कट जाती और भगवान शंकराचार्य तो ऐसे अशुद्ध हो जाते कि हजारीबाग तो क्या "लक्खीबाग" के जेल में जाकर भी शुद्ध नहीं हो सकते ।"[22]

"मतवाला" का लेखक मण्डल हिन्दूवादी होने के कारण गो रक्षा का प्रमुख समर्थक था और गो हत्या के तीव्र विरोधी । ये लोग कसाईबाड़ा खोले जाने के कटु आलोचक थे । उनका कहना था कि गौ हत्या से हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुँचती है अत: मुसलमानों को गोहत्या छोड़ देनी चाहिए। मुसलमानों की इस हठधर्मिता के कारण ही भारत में गायों की संख्या घटती जा रही है । दूध घी कम होता जा रहा है । अत: गोहत्या का कोई औचित्य नहीं । इसलिए "मतवाला" इसे हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों की साजिश मानता है ---" मुसलमानों ने जानबूझ कर हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिए गोहत्या को अपना धार्मिक कृत्य बना लिया है । इसलिए छिपकर या प्रकट रूप से जब तक गोहत्या इस देश में होती रहेगी तब तक हिन्दू मुसलमानों में प्रकृत मेल नहीं होगा ।"[23]

"मतवाला" की हिन्दूवादी दृष्टिकोण का परिचय इस बात से भी

---

21. "मतवाला" 8 सितम्बर 1923, पृ0 192
22. "मतवाला" 19 अप्रैल 1924 ई. पृ0 616
23. मतवाले का मत" -सं. कर्मेन्दुशिशिर, पृ0 97

चलता है कि वह मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली का आलोचक था । साथ ही वह महात्मागांधी से इन दोनों लोगों की निकटता भी पसंद नहीं करता था । इसका एक कारण यह भी था कि खिलाफत आंदोलन प्रतिगामी था, दूसरा कारण हिन्दूवाद था तीसरे इन दोनों भाइयों पर "मतवाला" वाले विश्वास भी नहीं करते थे । इसीलिए दोनों के खिलाफ "मतवाला" में अनेक व्यंग्य लेख निकले ---" मौलाना मुहम्मद अली इस समय असमंजस में पड़े हुए हैं । अगर खुले शब्दों में हिन्दू-संगठन और शुद्धि आंदोलन का विरोध करके मुसलमान संगठन की चर्चा चलाते हैं, तो आल इण्डिया लीडरी छिन जाती है, और अगर हिन्दू संगठन का समर्थन करते हैं तो मुसलमान भाई उन्हें "काफिर" कहकर निकाल बाहर करते हैं । मौलाना जी की जान अजब कशमकश में है । " भई गति साँप छछुन्दर केरी। "[24]

"मतवाला" ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति देश के नेताओं के नजरिये को एकदम साफ कर दिया है । वह नेताओं के उस पाखण्ड का भण्डाफोड़ जनता के सामने कर देता है, जिसमें वे एक तरफ ऐकता का पाखण्ड रचते हैं, और दूध से धुले बने रहने की कोशिश करते हैं ; परन्तु दूसरी तरफ यदि उनके गिरेवान में झाँककर देखा जाय तो सारी कलई खुल जाती है, वे भी उसी साम्प्रदायिकता के कीचड़ में पाँव से लेकर गले तक पूर्णत: फँसे दिखाई पड़ते हैं । "मतवाला" के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम दंगों के पीछे नेताओं की खास भूमिका होती है ।यदि ये नेता लोगों में देश के प्रति मंगल कामना होती तो ये हिन्दू- मुसलमान दोनों के शुभ-चिंतक होते । यदि इनमें धर्म के प्रति सच्ची आस्था होती तो इस तरह के भयंकर नर संहार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता । इस प्रकार के साम्प्रदायिक दंगों के प्रारम्भ में नेता लोगों का कहीं पता नहीं रहता परन्तु भयानक नर संहार के बाद ये व्यर्थ दिखावे के लिए लाश गिनने और आँसू टपकाने के लिए इकट्ठे हो

---

24. "मतवाला" 3 नवम्बर, 1923 ई. पृ0 116

जाते हैं । और अपनी वाक चातुरी के साथ भाषा कौशल के द्वारा लम्बी-लम्बी रिपोर्ट लिखकर कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं । "मतवाला" नेताओं की इसी मानसिकता पर व्यंग्य करता हुआ लिखता है कि --" दिल्ली और लखनऊ के दंगों की ।।1923।। आशंका लोगों को बहुत पहले से थी, खुल्लमखुल्ला तैयारियां और सभायें होती रही, वक्ता लोग एक दूसरे के प्रति खूब आग उगलते रहे, उस समय नेता लोग गदहे की सींग की तरह लापता थे । यदि इन नेताओं में परिस्थिति के अनुकूल कार्य करने की बुद्धि होती तो जो "संधि-कान्फरेंस " 1924 में दिल्ली में बैठी है वह बहुत पहले बैठी होती और अब तक देश की जो क्षति हुई है वह नहीं होती ।"[25]

"मतवाला" के इस हिन्दूवादी रूख के चलते इसके ऊपर हिन्दू सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने का लगातार आरोप लगता रहा जो बहुत कुछ सही भी है परन्तु इसके साथ -साथ सारा दोष "मतवाला" के लेखकों का ही नहीं है बल्कि तत्कालीन परिस्थितियां ऐसी थी जिसमें हिन्दुओं के ऊपर मुसलमानों द्वारा अत्याचार होते रहने के बावजूद वह समय ही ऐसा था कि शोषक या अत्याचारी कोई मुसलमान होता था वह अत्याचार मुसलमान या हिन्दू के रूप में नहीं करता था बल्कि अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु करता था, सभी मुसलमान या हिन्दू ऐसे नहीं थे।इसलिए यह मान लेना कि हिन्दुओं पर अत्याचार मुसलमान कर रहे हैं बिल्कुल गलत था । हिन्दू मुसलमान एकता के नाम पर जब कभी समझौते भी होते थे तो वे अस्थाई और राजनीति प्रेरित ही होते थे ।

"मतवाला" ने हिन्दू - मुस्लिम की राजनीतिक ऐकता का विरोध तो किया लेकिन गैर राजनीतिक एकता के लिए कुछकर नहीं सका। जब कि राजनीति

---

25. "मतवाले का मत " -कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 87

से इतर भी हिन्दू-मुस्लिम के बीच बहुत कुछ है । नतो कोई प्रस्ताव रखा न ही कोई नीति चलाई । वह खुद राजनीतिक केन्द्र पर ही रह गया। हिन्दू-मुस्लिम की समस्या को राजनीति से अलग हटकर देखने की कोशिश भी न की। मतवाला की आय में 'हिन्दू हितों की बलिबेदी पर मुसलमानों में सद्भावना लाने का प्रयास किया जाता था । परिणाम स्वरूप मुसलमानों की धार्मिक सम्प्रदायवादी भूख बढ़ती गयी और कांग्रेस हिन्दुओं को दबाती गयी । इस प्रकार हिन्दू दोहरे शोषण का शिकार होते रहे, एक तो मुसलमानों द्वारा किया जाने वाला अत्याचार और दूसरे कांग्रेस की तुष्टीकरण नीति । इन दोनों के बीच हिन्दुओं ने अपने को सर्वथा असहाय स्थिति में पाया'। इसी समझ के चलते मतवाला का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हालांकि ऐसा था नहीं । "मतवाला" का प्रकाशन हिन्दू समुदाय के लिए आशा का मार्ग था । "मतवाला" ने देश के हिन्दुओं को लगातार जगाने का प्रयास किया और हिन्दू धर्म की रूढ़ियों एवम् संकीर्णताओं को समाप्त करके उसे युगीन आवश्यकता के अनुरूप ढाला। परन्तु कहीं-कहीं पर "मतवाला" के लेख बहुत ही अतिवादी हो गये हैं जिसके चलते तत्कालीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण मांग हिन्दू मुस्लिम एकता को आघात पहुँचा ।

.....0.....

(ख) तत्कालीन दंगों, शुद्धि और "तबलीग" आंदोलन के बारे में मतवाला में रिपोर्टिंग :

" एक साम्प्रदायिकता से दूसरी साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं होती प्रत्येक एक दूसरे को बढ़ावा देती है, और दोनों ही पनपती है।"

--- पण्डित जवाहरलाल नेहरू

साम्प्रदायिक दंगों को लेकर की जाने वाली बहसों में सबसे बड़ी गलती की जाती है वह यह है कि इनमें साम्प्रदायिकता के ऊपर ज्यादा जोर दिया जाता है । और दंगों पर कम । दरअसल दंगा वाली प्रवृत्ति साम्प्रदायिकता का चेहरा पहन कर आती है और निदान करने वाले रोग की जड़ों को समझने में भूल करते है। 1923 में अमृतसर, आगरा, मुलतान, मुरादाबाद, भालेगाँव, मालावार, इलाहाबाद, पानीपत, गोण्डा, लखनऊ और मैमन सिंह इत्यादि स्थानों पर जो साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं उसके पीछे साम्प्रदायिकता का जहर काम नहीं कर रहा था यह मानना भूल है, लेकिन यह मानना कि हिन्दू-मुसलमान के बीच साम्प्रदायिक सद्भाव के वातावरण से सब कुछ ठीक हो जाने वाला है - एक दूसरी बड़ी भूल है । साम्प्रदायिकता रूपी जहर और परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक दंगों पर विचार करते हुए भीड़ और व्यक्ति की मानसिकता को समझना आवश्यक है । साम्प्रदायिकता की भावना व्यक्ति में दंगों के पहले और दंगों के बाद भी होती है। लेकिन वह दंगों में तभी बदल पाती है जब व्यक्ति का विवेक भीड़ की उत्तेजना का अंश बन जाता है ।यह आकस्मिक नहीं है कि दंगा करने वाली भीड़ केवल हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के तथाकथित पुराने जहर के द्वारा उत्तेजित की जा सकती है, बल्कि भीड़ को उकसाने के लिए किसी भी समय कोई भी जहर पैदा किया जा सकता है ।

अगर हिन्दू-मुसलमान के बीच दंगे का कारण साम्प्रदायिकता है

तो फिर उनके मेल तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात काल्पनिक है । यह सच है कि हिन्दू और मुसलमानों में उतनी एकता हर वक्त रहती है जितनी की दो सम्प्रदायों में हो सकती है । दैनिक व्यवहारों में हिन्दू-मुस्लिम उतने एक हैं जितने कि हिन्दू-हिन्दू और मुसलमान-मुसलमान भी नहीं। यह पहले भी कहा जा चुका है कि उच्चवर्गीय हिन्दू और उच्चवर्गीय मुसलमान में काफी समानता है उसी प्रकार निम्नवर्गीय हिन्दू तथा निम्नवर्गीय मुसलमान का जीवन स्तर एक समान है । फिर भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात बार-बार दुहराई जाती है यह सिर्फ धोखा या छल है तथा राज नेताओं की करतूत है । जब-जब उनकी एकता की बात करते हैं कुछ न कुछ जोड़ देते हैं । आखिर उनकी एकता किसलिए ? सिर्फ वोट की राजनीति के लिए । साम्प्रदायिकता की भावना को व्यक्तिगत धार्मिकता से अलग कर कौमी दंगों में परिवर्तित करने का श्रेय राज नेताओं को ही है । 1920 के दशक में साम्प्रदायिक दंगों के कारण यही कांग्रेसी, हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग के नेता रहे है यह जग जाहिर है । ब्रिटिश सरकार अपने मंसूबे में पूरी तरह कामयाब रही ।

---

अजीब विडम्बना है कि शिक्षा से मनुष्य अपनी पाशविकताएं भूलता है, लेकिन हिन्दुस्तान में शिक्षित होने के बाद लोगों में पाशविकताएं बढ़ी है, दिमाग तंग हुए हैं क्योंकि " भारतवर्ष में अरब व्यापारियों का पहला बेड़ा यानि इस्लाम का प्रवेश 636 ई. में हुआ, दूसरा मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण 712 ई. में तथा तीसरा तुर्क आक्रमण (मुवुक्तमीन) द्वारा 986-87 ई. में हुआ, तथा चौथा 1526 ई. में बाबर के भारत आगमन पर हुआ । मुगलो ने 16वीं शताब्दी से लेकर 18वींशताब्दी तक भारत पर शासन किया [27] धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया भी कई बार हुई । " पहली बार मुस्लिम संतो एवं फकीरों द्वारा धर्म परिवर्तन कराया गया, क्यों कि ये लोग अपने व्यवहारों तथा चमत्कारों से लोगों को प्रभावित किया । इनका एकमात्र उद्देश्य शांति पूर्वक

---

27. "प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम संबंध", पृ0 13-14-ओम प्रकाश सिंह

धर्म का प्रचार व प्रसार करवा कर वे अपने उद्देश्य में सफल रहे, बहुत से हिन्दू स्वेच्छया मुसलमान बन गये। दूसरे मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के साथ ही विजेताओं एवं आक्रांताओं द्वारा धर्म परिवर्तन का कार्य आरम्भ हुआ । यहाँ जोर जबरदस्ती का प्रयोग हुआ । तीसरे मध्यकालीन मुगल शासकों ने प्रलोभन देकर भी हिन्दू जनता को मुसलमान बनाया । मुसलमानों के साम्राज्य में हिन्दू समाज अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों से बंचित था। इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए बहुत हिन्दू मुसलमान बने । मुस्लिम शासकों ने इन्हें पुरस्कृत कर प्रोत्साहन भी दिया । यद्यपि इस तरह का धर्म परिवर्तन बाहरी तौर पर स्वेच्छया हुआ, परन्तु यह धार्मिक पक्षपात की राजनीति थी जो किसी न किसी रूप में हिन्दुओं पर थोपी गई थी । चौथे- हिन्दू धर्म की संकीर्णता के कारण भी कुछ लोगों ने धर्म परिवर्तन किया । मुसलमानों ने जहाँ-जहाँ कदम रखा जिस गाँव के कुएं में पानी पिया वहाँ-वहाँ के लोगों को हिन्दू धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया । इन लोगों के किए प्रायश्चित करने के लिए भी कोई विधि-विधान नहीं था इस जड़ता तथा संकीर्णता के कारण काफी हिन्दू मुसलमान बन गए । पाँचवा - हिन्दुओं की सामाजिक जड़ता का एक दूसरा पक्ष भी सामने आता है । वह है हिन्दू समाज की उपजातियों के बीच ऊँच-नीच की भावना । हिन्दू समाज सामाजिक विधि-विधान के कारण अनेक उप जातियों में बँटा हुआ था । उच्च वर्ग, निम्न वर्ग पर अत्याचार करता था । फलत: इस सामाजिक अवमानना से मुक्त होने के लिए लोग मुसलमान बने।"[28]

मुसलमान के हजारों साल के इतिहास में हिन्दू भी थे पर कभी सांप्रदायिक दंगे की सूचना नहीं मिलती । इस इतिहास का बदला अगर 20वीं शताब्दी में लिया जा रहा है तो यह निश्चित रूप से सामाजिक विकृति एवं

---

28. "प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम संबंध", पृ0 15-16
- ओम प्रकाश सिंह

मानसिक संकीर्णता ही कही जायेगी । साम्प्रदायिकता 20वीं सदी की आधुनिक विचारधारा है तथा आधुनिक राजनीति में जन सामान्य की भागेदारी से उद्भूत हुई है । साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा को जन्म देने वाले तथा-कथित राजनेता ही है जो ब्रिटिश शासन में चाटुकारिता करते रहे तथा समाज को विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित कर अपनी खानापूर्ति कर रहे थे ।

1920-30 के बीच साम्प्रदायिक दंगों की भरमार का मुख्य कारण 1919 के पश्चात राजनीतिक संरचना में आने वाला परिवर्तन था । 1919 के माटेग्यू चैम्सफोर्ड ने भारतीयों के विरोध को देखते हुए मताधिकार का विस्तार तो किया परन्तु पृथक निर्वाचन मण्डल का भी विस्तार कर दिया । दिसम्बर 1906 में राजनीतिक संगठन के रूप में "मुस्लिम लीग" का गठन तथा लीग द्वारा पृथक निर्वाचन तथा मुस्लिम विशेषाधिकारों के मांग की जबर्दस्त प्रतिक्रिया हिन्दू समाज पर हुई । 1907 में 'हिन्दू महा सभा' की भी स्थापना हो गई । "मुस्लिम लीग " और "हिन्दू महासभा" का गठन राजनीतिक रूप से हुआ । परिणामस्वरूप इसके नेतागण अपने-अपने समुदाय के लाभ के लिए प्रयास करना शुरू कर दिये, जिसके साम्प्रदायिक ताकतों को और अधिक बल मिला । ब्रिटिश सरकार की "फूट डालो और शासन करो " नीति सफल रही । चूँकि वह हिन्दुओं और मुसलमानों को विभाजित करने का प्रयास प्रारम्भ से कर रही थी हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग के गठन ने उसके मंसूबे को साकार कर दिया ।

यहाँ आकर साम्प्रदायिकता अपनी परिभाषा को चरितार्थ करने लगती है । हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग दो विभिन्न सम्प्रदायों के राजनीतिक संगठन जिनके सांसारिक हित । सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक। एक दूसरे से भिन्न तथा परस्पर विरोधी हो जाते हैं । वास्तव में ऐसे होते नहीं लेकिन साम्प्रदायिकवादी अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए बना देते हैं ।

साम्प्रदायिक दंगों के संदर्भ में अगस्त 1925 में हुए पानीपत के दंगे के बारे में मतवाला रिपोर्टिंग करता है कि ---" अभी हाल ही में पानीपत के हिन्दू-मुसलमानों में जो दंगा हुआ है, उसके लिए अखबार वाले केवल नौकर शाही पर इल्जाम लगा रहे हैं।"[29] यानि पत्र की राय है कि केवल इसके लिए जिम्मेदार केवल नौकरशाही नहीं कोई और भी है, संकेत मुसलमानों की ओर है। पत्र आगे लिखता है कि " हिन्दुओं के सब दु:खों की एक दवा बस हिन्दू संगठन है। उसी संगठन के लिए, अभी केवल एक ही जगह पर नहीं, जहाँ कहीं मुसलमानों की बस्ती अधिक है, सर्वत्र हिन्दुओं को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हिन्दू संगठन की नींव बलिदान से पक्की होगी। लेकिन जब पक्की हो जायेगी, तब उसकी दृढ़ता के लिए मुसलमानों के सारे अत्याचारों को भूल जाना पड़ेगा। किन्तु इस समय तो भूल जाना बड़ा कठिन है। इस समय तो बस वीरता पूर्वक उनके सभी तरह के अत्याचारों का प्रतिकार होना ही चाहिए। यदि पानीपत के हिन्दू पीड़ित हो रहे हैं तो भारत के प्रत्येक स्थान के हिन्दू उनके दु:ख से दु:खी और सुख से सुखी होने का व्रत धारण करें। साथ ही पानीपत के हिन्दू भाई भी अपने प्राणों पर खेलकर हिन्दुत्व की रक्षा के लिए डटे रहें। xxx हिन्दू जाति से सहानुभूति रखने वाली जितनी संस्थाएं देश में मौजूद हैं, इस समय सबके सब पानीपत को ही अपनी चिंता का केन्द्र बना लें।"[30] पत्र हिन्दू संगठन पर बल देता है। मतवाला यह मानता है कि जहाँ मुसलमानों की बस्तियां अधिक है वहाँ हिन्दुओं पर अत्याचार किया जा रहा है और ये सारे अत्याचार मुसलमानों द्वारा ही हो रहे हैं। हिन्दू जाति की संस्थाएं जो देश में मौजूद है सबका ध्यान पानीपत की तरफ मोड़ता है साथ ही पानीपत के भाइयों को हिन्दुत्व की रक्षा के लिए प्राणों पर खेलने की सलाह देता है। मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं तथा मतवाला

---

29. "मतवाले का मत "- सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 92, पानीपत, 22.8.1925
30. वही वही पृ0 93

का क्या दृष्टिकोण है, स्पष्ट हो जाता है । मुसलमानों को, पत्र हिन्दुओं के शत्रु के रूप में चित्रित करता है । आगे पत्र लिखता है कि " विश्वास है कि पानीपत के हिन्दू भाई चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह पूर्ण निर्भिकता और साहस के साथ धार पर डॅट जायेगें तथा बाहर के हिन्दू उनकी सहायता के लिए अविलम्ब दौड़ पड़ेंगे ।"[31] जिस तरह मतवाला हिन्दुओं को उत्तेजित करता है क्या इससे हिंसा बढ़ नहीं सकती, क्या ये उत्तेजनापूर्ण वक्तव्य सांप्रदायिक हिंसा की वृद्धि में सहायक नहीं हुए होगें । पूरी रिपोर्टिंग मुसलमानों के विरूद्ध हिन्दुओं के समर्थन में है । सारा खतरा, सारी जड़ उस दंगे की मुस्लिम ही है, उन्हीं का सारा दोष है । हिन्दुओं का दोष लेशमात्र भी मतवाला नहीं देता । किसी भी सांप्रदायिक दंगे में क्या यह संभव है कि उससे एक ही पक्ष हताहत हो, दूसरा नहीं? पर मतवाला सिर्फ हिन्दुओं के हताहत होने की बात करता है, सिर्फ हिन्दुओं के जानमाल का हितैषी है बाकी के प्रति मतवाला की दृष्टि कितनी साफ है बताना आवश्यक नहीं ।

"तबलीग" और "तंजीम " मुसलमानों में जो आन्दोलन चलाये गए थे उसके बारे में जानना आवश्यक है कि मुख्यत: "तबलीग" क्या था । "तबलीग" का अर्थ है प्रचार । इसके अंतर्गत यह विश्वास मान्य हो जाता है कि हम सब अल्लाह की सन्तानें हैं, हम ऐसा कर्म करें जिससे अल्लाह खुश हो और कोई मनुष्य उससे दु:खी न हो, यह विश्वास मान्य हो जाता है कि अगर हम गलत करेंगे तो मृत्यु के बाद अल्लाह हमसे हिसाब मांगेगा तो हम क्या जबाब देंगे इसलिए हम हर काम नेक करें । अल्लाह के नाम पर मुसलमानों को 5 काम फर्ज़ किया गया है ---पाँच बार नमाज, कलमा, रोजा, निजात और हज । जो व्यक्ति

---

31. "मतवाले का मत"-सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 93

अपने आप को मुसलमान होने का दावा करता है उसे यह फर्ज किया गया है। तबलीग के अन्तर्गत व्यक्ति अपने आचरण और कर्तव्य तथा व्यवहार से दूसरे को आलोकित करे ताकि उसका प्रभाव दूसरों तक पहुँच सके यानि दूसरे लोग भी प्रेरणा पाकर ऐसा ही आचरण, कर्म कर सकें ताकि इस्लाम का प्रचार-प्रसार हो सके। चूँकि तबलीग की धारणा पहले से मुसलमानों के अस्तित्व के साथ ही विद्यमान थी लेकिन 1923 में बंगले वाली मस्जिद, निजामुद्दीन, दिल्ली से ही मौलाना इलियास रहमतुल्ला अलेई द्वारा प्रचालित की गई, बाद में मेवात हरियाणा उसका केन्द्र बना "तंजीम" का अर्थ संगठन से है लेकिन संगठन नहीं। इसका अर्थ मेहनत है यानि अल्लाह के प्रति पवित्र धार्मिक प्रयास। दूसरे अर्थों में तंजीम अल्लाह के बताये हुए तरीके पर अमल करने को कहा गया है। समाज सुधार तथा धर्म सुधार के रूप में भी तबलीग का प्रयोग हुआहै। क्योंकि मुसलमानों में भी सुधार वाली भावना रही है।

1828 में राजाराम मोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना तथा 1876 में दयानंद सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य भी समाज सुधार रहा है। 1923 ई. में श्रद्धानंद द्वारा शुद्धि और संगठन की स्थापना का उद्देश्य भी सुधारवादी रहा है।

शुद्धि और संगठन तथा तबलीग और तंजीम किन परिस्थितियों की उपज थे यह जानना आवश्यक हो जाता है -- कौन से ऐसे घटक थे जो इनको पैदा किये ? सुमित सरकार का मानना है कि आर्यसमाजियों ने मोपलों द्वारा बलपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के बाद शुद्धि आंदोलन चलायाथा। और श्रद्धानंद द्वारा 1923 के बाद पश्चिमी संयुक्त प्रांत में इसका प्रचार-प्रसार किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य, उन मलकान राजपूतों, गुजरों और बनियों को पुन: हिन्दू बनाना था जिन्हें मुसलमान बनाया गया था। इस प्रकार शुद्धि दोनों

सम्प्रदायों में कटुता बढ़ाने में अधिक सहायम हुआ ।

प्रो. विपिन चन्द्र के अनुसार --" शुद्धि का तात्पर्य था धर्म को अधिक कट्टर एवं कम सार्वजनिक बनाना तथा दूरूस्थ एवं विरोधी परम्पराओं की ओर लौटना । ये परम्पराएं उस काल की थी जब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से नहीं मिले थे । यही कारण था कि ये परम्पराएं हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक खाइयों को बढ़ाने में सहायक होती थी ।"[32] यह सही है कि शुद्धि से हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक , सांस्कृतिक तथा सामाजिक खाइयां बढ़ी हैं । परिणामत: मुसलमानों में तबलीग, और तंजीम आंदोलन की शुरूआत हो गई । मतवाला शुद्धि का पृथक समर्थक था जैसे --" मलकानों का शुद्धि आंदोलन उठ खड़ा हुआ और मुसलमान भाइयों का जी बैठ गया । उनके लिए शुद्धि हौवा हो गई । उनके मन में यह शंका हुई कि अब सारे भारत के मुसलमान हिन्दू बना लिये जायेंगे । शुद्धि के कार्यकर्ताओं पर भी वे बाज नहीं आये । हिन्दू सभा और संगठन को वे औरंगजेबी नजर से देखने लगे ।"[33]

मुसलमानों के प्रति शुद्धि के बारे में मतवाला का पक्षपाती दृष्टिकोण मतवाला के समर्थक होने का प्रमाण है --- मुस्लिम साम्प्रदायिकता की नींव तो बहुत पहले से पड़ चुकी थी । 1922 ई. में गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन वापस लिये जाने पर राजनीति के क्षेत्र में कुछ निराशा आई । बीच के उसी शांत काल में मुसलिम लीग की सक्रियता बढ़ गई । इसके कट्टर समर्थकों ने राष्ट्रवादी ताकतों को लीग से बाहर निकालना प्रारंभ कर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप

---

32. आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता -प्रो. विपिन चन्द्र पृ0 133

33. मतवाले का मत - कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 80
"जोगी-जोगी लड़ै, खप्परों की हानि" - 17.11.1923

मुसलमान एक बार फिर राष्ट्रीय आंदोलन से कटने लगे । 1927 में साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रश्न पर लीग विभाजित हो गई और जिन्ना के समर्थनवादी लीग ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया किन्तु मुहम्मद शफी और उनके अनुयायियों ने साइमन कमीशन का साथ दिया । इन सबका प्रभाव राष्ट्रवादी मुसलमानों पर भी पड़ना शुरू हुआ । दिल्ली कांग्रेस के समय मुसलमानों ने राष्ट्रगीत "बंदे मातरम्" का विरोध किया । मुसलमानों ने स्वागत मण्डल का बाजा बजाने तक रोक दिया । इन सभी बातों के अतिरिक्त जब 18 सितम्बर को गांधी दिवस के सम्मान में जब सारी कांग्रेस खड़ी हुई तो बहुत से मुसलमानों ने खड़ा न होकर इसका विरोध किया । मुसलमानों की इस बढ़ती साम्प्रदायिकता और कट्टरता को मतवाला शुद्धि आंदोलन की प्रतिक्रिया मानता है जैसा कि उसने 7.11.1923 के लेख "जोगी जोगी लड़े खप्परों की हानि! शीर्षक के अन्तर्गत व्यक्त किया है ---" यह सब क्या था ? शुद्धि का मुँह तोड़ जबाब ? नहीं, शुद्धि का जबाब तो ऐसी संगदिली के साथ दिया गया कि उसे दुहराने की कोई जरूरत नहीं है -- वह हिन्दू-मुसलमानों की एकता के इतिहास में बड़ा ही भयंकर अध्याय है ।"[34]

हिन्दू-साम्प्रदायिकता का जन्म 1918 से पहले उस अर्थ में नहीं हो सका जिस अर्थ में मुस्लिम साम्प्रदायिकता अपने शीर्ष पर थी और यह कहना गलत न होगा कि हिन्दू साम्प्रदायिकता - मुस्लिम साम्प्रदायिकता की तुलना में कम विकसित हो सकी थी । 1918 और 1922 के बीच का समय हिन्दू संगठनों की असफलता का समय था जिससे हिन्दुओं में निराशा घर कर गयी थी । परन्तु 1923 ई. में " हिन्दू महासभा" के अखिल भारतीय अधिवेशन से पुन: हिन्दू जाति के पुनरूद्धार का प्रयास तेज हुआ । फिर भी अभी वह काफी कमजोर बनी रही क्योंकि उस पर राष्ट्रवादी ताकतों का बहुत अधिक प्रभाव था । परन्तु धीरे-धीरे

---

34. "मतवाले का मत"- कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 81 , 17.11.1923
"जोगी जोगी लड़े खप्परों की हानि "

हिन्दू सम्प्रदायवाद का बोलबाला होने लगा और उसने शुद्धि और संगठन का कार्य प्रारंभ कर दिया । इस हिन्दू महासभा के प्रचार का लक्ष्य अंग्रेजी सरकार नहीं बल्कि मुसलमान थे । हिन्दुओं के इस बढ़ते प्रभाव से मुसलमानों का चिंतित होना स्वाभाविक ही था । " किन्तु जमायत को इतनी दूरंदेशी से काम लेना पसंद नही है । वह मारकाट मचाकर शुद्धि बन्द करना चाहती है । वह जगह-जगह अखाड़े खोलकर हिन्दू सभाओं पर रोब गाँठना चाहती है । पर अब भभकियों से कुछ होना जाना नहीं । हिन्दू जागते जा रहे हैं, मार खाकर ही सही।"[35] शुद्धि के बारे में मतवाला की रिपोर्टिंग चूँकि जमायत को शुद्धि पर एतराज नहीं है, एतराज है भी तो उसकी पद्धति पर । जिस पद्धति के तहत लोगों को शुद्ध किया जा रहा था उसमें बहुत सारे मुसलमानों को भी लोगों ने शुद्ध कर हिन्दू बना दिया इससे उन्हें आशंका होना स्वाभाविक था ।

शुद्धि किसी दूसरे समुदाय से वैमनस्य नहीं करना चाहती, बल्कि शांतिपूर्ण तरीके से ही धार्मिक संगठन की शक्ति बढ़ाई जायेगी । हिन्दू तो तभी उन्नतशील माना जायेगा जबकि वह वीर और समर्थवान हो, सुसंगठित और शक्तिशाली हो, उदारता और अभयदान के भाव से भरा हो तथा उसमें किसी को सताने की दुर्भावना न हो । यदि इसके विपरीत हिन्दू कार्य करते हैं तो वह हिन्दू धर्म के विरूद्ध है । यदि हिन्दू बदले की कार्यवाही करता है तो वह पंडित है । अत: हिन्दू के शुद्धि आंदोलन ।।1923। के पीछे उसकी कोई बुरी मंशा नहीं है ---" हिन्दू अपना संगठन इसलिए नहीं करना चाहते कि मुसलमानों को भारत से मार भगा देंगे, शुद्धि आंदोलन वे इसलिए नहीं करते कि सारे भारत के मुसलमानों को हिन्दू बनाकर भारत से इस्लामी झण्डा उखाड़कर फेंक देंगे ।

---

35. "मतवाले का मत " -कर्मेन्दु शिशिर , पृ0 8। 17.11.1923
" जोगी-जोगी लड़े खप्परों की हानि "

यदि इस मंशा से शुद्धि और संगठन हो रहा हो तो निश्चित ही उसे फौरन पेशतरबंद कर देना चाहिए, क्योंकि किसी जाति या धर्म के साथ द्वेष करके यदि हिन्दू उन्नत हुए तो वह उन्नति कदापि भारतीय हिन्दुओं के योग्य नहीं ।"[36]

मतवाला" वास्तव में हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ भड़का कर दंगा नहीं कराना चाहता वह तो हिन्दू जागरण के बल पर मुसलमानों को दंगा न करने के लिए एक प्रकार की घुड़की देता है । क्योंकि मतवाला की नजर में साम्प्रदायिक दंगे शक्ति असंतुलन के कारण ही होते हैं इसलिए शक्ति संतुलन की अति आवश्यकता है, जो हिन्दुओं को भी मुसलमानों की तरह शक्ति-शाली बनाकर ही प्राप्त की जा सकती है । हिन्दुओं की रक्षा मुसलमान जैसे धर्मान्धों से जमकर मुकाबला करने से ही हो सकती है, दुम दबाकर भागने और आंसू बहाने से, ये पत्थर दिल मुसलमान कदापि नहीं पिघल सकते । "मतवाला" मुसलमानों को भी आगाह कर देता है कि वह किस प्रकार से एक जागती हुई जाति के मन में अपने प्रति ईर्ष्या भाव भर रहे हैं वह उनके भविष्य के प्रति अच्छा नहीं है । जिस तरह से मुसलमान हिन्दुओं के मंदिर को तोड़ रहे हैं और हिन्दू महिलाओं पर अत्याचार कर रहे हैं । यदि उसी तरह हिन्दू करने लगेंगे तो फिर देश की स्थिति क्या होगी ? हिन्दुओं को भी अपने को इतना सुदृढ़ कर लेना चाहिए जिससे कि उनकी महिलाओं की ओर कोई आँख उठाकर न देख सके, मंदिरों का अपमान करने की भी बात न सोंच सके और जुलूसों को रोकने की ओर कदम न बढ़ा सके । "मतवाला" लेखक मण्डल की सहृदयता मुसलमानों के प्रति बची है वह इसलिए कि शुद्धि में मुसलमान बाधा न डालें और शुद्धि कामयाब हो जाय । वह मुसलमानों से अभी भी भाई चारे का रिश्ता कायम करने का

---

36. "मतवाले का मत" - कर्मेन्दु शिशिर, पृ० सं. 81, 17.11.1923
"जोगी-जोगी लड़े खप्परों की हानि"

पक्षपाती है परन्तु शर्त यह है कि इसके लिए मुसलमानों को भी अपनी हठधर्मिता छोड़नी होगी ---" हाँ भाईचारा के नाते से यदि मुसलमान भाई अपनी मस्जिदों के सामने बाजा न बजाने की सूचना दें तो हिन्दू जाति की विश्व-विख्यात धर्मप्राणता के नाम पर हिन्दुओं का प्रधान कर्तव्य होगा कि अपने छोटे भाइयों के संतोष के लिए वहाँ बाजा बजाना बिल्कुल बंद कर दें। अगर किसी खास जगह पर बाजा न बजाने से ही एकता का सूत्र टूटने से बच जाय तो हिन्दुओं को हठवश अपने सिर पर कलंक का टीका न लगाना चाहिए।"[37]

"मतवाला" "शुद्धि" आंदोलन के विरोध के लिए केवल मुसलमानों को ही आगाह नहीं करता बल्कि वह हिन्दुओं को भी शांतिपूर्ण कार्य के लिए प्रेरित करता है। वह हिन्दुओं के किसी ऐसे कार्य का समर्थन नहीं करता जिससे -- साम्प्रदायिक दंगा भड़के बल्कि वह 'शुद्धि' और संगठन के बारे में अत्यन्त सजगता से काम लेता है। "मतवाला" लेखक मण्डल यह चाहते हैं कि हिन्दू जाति के अन्दर जितनी भी श्रेणियां और जातिगत भेद है उन सबको समाप्त करके सम्पूर्ण हिन्दू जाति को एक जमीन प्रदान की जाय। हिन्दू, संगठन का कार्य केवल किसी खास जिले तक ही सीमित न रहे बल्कि सम्पूर्ण देश में जिला स्तर पर, तहसील और गाँव-गाँव में भी इसकी नींव पड़नी चाहिए तभी हिन्दू जाति शक्ति सम्पन्न होगी "मतवाला" हिन्दू जाति के सबसे निचले वर्ग को अधिक महत्त्व देना चाहता है जिससे कि अछूत-भाव को दूर किया जाय। इसके लिए वह हिन्दू धर्म की बड़ी कटु आलोचना भी करता है। वह शास्त्रीय पंडितो की संकीर्ण मानसिकता के लिए उन्हें भी फटकारना चाहता है और अछूतों को गले लगाकर ही हिन्दू धर्म के विजय की आकांक्षा व्यक्त करता है। परन्तु वह हिन्दुओं

---

37. "मतवाला" 17 नवम्बर 1923 ई. पृ0 145

को यह भी सीख देता है कि इस काम में कहीं भी अशांति न फैलने पाये -- " शुद्धि और दलितोद्धार का काम इतनी शांति व सावधानी के साथ होना चाहिए कि ईर्ष्या द्वेष जनित राष्ट्रीय कलह उपस्थित होने की आशंका न रह जाय । ये दोनों ही हिन्दू महासभा के लिए अत्यंत आवश्यक है । यदि पाखंडी शास्त्रियों के स्वार्थमय ढकोसले के फेरे में पड़कर इन महत्वपूर्ण कार्यों की उपेक्षा की गई, तो केवल हिन्दू संगठन ही अधूरा न रहेगा, गिरी हुई हिन्दू जाति भी किसी प्रकार उठकर खड़ी न हो सकेगी । "[38]

"मतवाला" 'शुद्धि' 'संगठन' को हिन्दुओं की शक्ति समृद्धि में मुख्य सहायक साधन मानता है । वह हिन्दुओं को केवल मुसलमानों से मुकाबला करने के लिए नहीं संगठित करना चाहता है । बल्कि इसलिए "संगठन" करना चाहता है कि उन्हें कोई निर्बल समझ कर आँख न दिखा सके, जिससे हिन्दू भी अन्य समुदायों की बराबरी में बैठ सके । साथ ही हिन्दुओं की इज्जत और आबरू का खतरा टल जाय । शुद्धि और संगठन का मतलब यह नहीं कि दूसरे को दबाया और सताया जाय या दूसरों से बदला लिया जाय । इसलिए "मतवाला" ऐसे व्यक्तियों की निन्दा करता है जो शुद्धि के नाम पर मुसलमानों को भड़काते हैं और उन्हें बार-बार याद दिलाते हैं कि "इस्लाम खतरे में है " जबकि मुसलमान तबलीग को अपना परम धर्म समझते हैं और शुद्धि को राष्ट्रद्रोह का कार्य घोषित करते हैं -- "जमैयतुल-उलेमा के सदरनशीन साहब की राय में हिन्दुओं का शुद्धि आंदोलन देश-द्रोह है । परन्तु काफिरों को मुसलमान बनाना देश द्रोह नहीं । ठीक है, "काहू बैगन बायलो, काहू बैगन पथ्य"।"[39]

शुद्धि आंदोलन की प्रतिक्रिया में मुसलमानों द्वारा चलाये जाने वाले

---

38. "मतवाला" 2 फरवरी 1924 ई. पृ0 387
39. "मतवाला" 5 जनवरी 1924 ई. पृ0 289

"तबलीग" आंदोलन प्राय: साम्प्रदायिक दंगे का रूप ले लिया करता था, जिससे भयंकर नर संहार होते थे। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के मंदिर तोड़े जाते थे, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया जाता था और सैकड़ों बच्चों को तबलीग के नाम पर मूत्रेन्द्रियों पर छुरी चलाकर " सुन्नत" कर दी जाती थी। यहाँ तक कि हिन्दुओं की गायें भी नहीं बचने पाती थी। यह सब मात्र धार्मिक उन्माद में किया जाता था जिसके पीछे भीड़वाली मनोवृत्ति की अहम् भूमिका होती थी। इस "शुद्धि आंदोलन" का संचालनकर्ता आर्य समाज ही था। इसलिए मुसलमानों का मुख्य शत्रु आर्य समाजी ही हुआ करते थे इसी को लक्ष्य करके "मतवाला" में व्यंग्य का पुट उभर कर आया है ---" यदि स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज कृपापूर्वक पंचद्रव्य पानकर शुद्ध सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू बन जाय और अपना नाम बजाय श्रद्धानंद के "शुद्धानंद" रख लें तो हमारे मुसलमान भाई शुद्धि आंदोलन को सर झुकाकर तसलीम कर लें। क्योंकि उन्हें केवल आर्य समाजी शुद्धि से ही चिढ़ है।"[40]

हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक दंगों के मुख्य रूप से दो कारण ही रहे हैं "गौहत्या" और मस्जिद के सामने बाजा बजाना। परन्तु जो सबसे प्रमुख कारण रहा है वह है हिन्दुओं में "शुद्धि" और मुसलमानों में "तबलीग" का मुद्दा, परन्तु कभी-कभी साम्प्रदायिक दंगे भय की मनोवृत्ति के कारण भी हुआ करते थे, जिसमें यह बात विशेष रूप से शंका का केन्द्र बनती थी कि दूसरा पक्ष हमें समाप्त कर डालेगा। परन्तु कालान्तर में इस धार्मिक कट्टरता के चलते टकराव के कुछ और मुद्दे भी सामने आए जैसे होली के अवसर पर मुसलमानों पर रंग डालना, पीपल का पेड़ काटना आदि।

---

40. "मतवाला"। सितम्बर 1923 ई. पृ0 11

"मतवाला" में गोहत्या के प्रश्न को बार-बार उठाया गया। "मतवाला" का मानना है कि गोहत्या के पीछे कोई तर्क संगत कारण नहीं है बल्कि यह हिन्दुओं की भावनाओं को चोट पहुँचाने के लिए मुसलमानों की दुष्टतापूर्ण कार्यवाही है। " बाजा बजाने का मुद्दा भी बहुत पुराना नहीं है इसकी मनाही "कुरान" और हदीस में कहीं भी नहीं है बल्कि यह हिन्दुओं को दबाये जाने की एक प्रक्रिया है।"[41] इसी तरह गोहत्या को कोई भी मुसलमान अनिवार्य नहीं कह सकता। साथ ही आज भी हिन्दुस्तान में बहुत सारे मुसलमान ऐसे भी हैं जो न तो गोहत्या करते हैं और न ही गोमांस खाते हैं। यदि मुसलमान अपनी हठध मता से बाज आएँ तो गोहत्या बंद हो सकती है। नहीं तो मुसलमानों की जिद की आड़ में अंग्रेजों की उदरपूर्ति होती रहेगी और गोवंश समाप्त होता रहेगा। इतना समझाने बुझाने पर जब मुसलमान गोहत्या बंद नहीं करते तो "मतवाला" खीज कर व्यंग्य करता है कि --" गायें हिन्दू मुस्लिम एक्य की प्रधान बाधक है इसलिए एकता प्रेमियों को सब काम छोड़कर पहले गोवंश का ही ध्वंश कर लेना चाहिए। एकता के मार्ग का यह प्रधान कलंक जिस दिन दूर हो जायेगा, उस दिन देश उन्नति की चरमसीमा पर पहुँच जायेगा।"[42]

मुसलमानों ने कभी-कभी गोहत्या के सम्बंध में यह भी तर्क दिया कि गोमांस के बिना गरीब मुसलमानों का गुजर नहीं हो सकता। इस पर "मतवाला" ने अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उसका कहना था कि यदि मुसलमान भाई इतना भी त्याग करने को तैयार नहीं है तो हिन्दू-मुस्लिम एकता सुदृढ़ होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। मतवाला की राय में गोरक्षा धार्मिक दृष्ठि से भी बहुत जरूरी है। इसी बात को व्यंग्य के रूप में "मतवाला" स्पष्ट करता है ---" क्या मुसलमानों की दृष्टि में दूध न देने वाली गायों का

---

41. "मतवाले का मत" -सं. कर्मेन्दु शिशिर, पृ0 96, मेल -31.7.1926
42. "मतवाला" 29 दिसम्बर- 1923 ई., पृ0 260

कुछ भी महत्व नहीं है ? हो भी तो कैसे ? जब अपने रामपुर वालों के लिए ।कुत्ते के मांस । को अभाव की पूर्ति करने वाला कह दिया तो बेचारी बाँझ गाय की बिसात ही क्या है ।"[43]

"मतवाला" ने विशेष ध्यान "शुद्धि" पर दिया और उसको शांतिपूर्ण करार दिया, जबकि "तबलीग" को मुसलमानों की धर्मान्धता और अत्याचार का परिणाम माना । पर वास्तव में ये दोनों ही प्रवृत्तियां हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अच्छी बात नहीं थी । अंतत: यह कहना गलत नहीं होगा कि तबलीग और तंजीम तथा शुद्धि और संगठन एक दूसरे की प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा हुए और शुरू में इसका स्वरूप उदारवादी एवं सुधारवादी था, लेकिन शुद्धि का जो तरीका था वह गलत होने के कारण मुसलमानों में इसकी प्रतिक्रिया होने लगी । तबलीग भी एक तरह से इसलाम के प्रचार प्रसार के रूप में आया क्योंकि उनको लगता था कि इसलाम अब खतरे में हो रहा है और हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र हो जायेगा तो हमारा जनाधार कम हो जायेगा और हम हिन्दुओं द्वारा शासित एवं शोषित हो जायेंगे । यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि ये दोनों आंदोलन शुद्धि और तबलीग राजनीति प्रेरित थे और धर्म का लबादा ओढ़कर अपना जनाधार ही तैयार कर रहे थे । इसलिए "मतवाला" को "शुद्धि" और तबलीग दोनों के कारण होने वाले मूखतापूर्ण भयानक नर संहार पर हँसी आती है ---" तंजीमी नेता चौंके हैं और तबलीगी भी, संगठनी नेता कनमनाये हैं और आर्य समाजी भी, मगर मुझे यह सब अच्छा नहीं मालूम पड़ता । मैं तो नेताओं के इस शांति के घुँघट में भी किसी भावी-भयानक अशांति की छाया देख रहा हूँ। इसी से मुझे हँसी आ रही है ।

....0.....

---

43. मतवाला- 19 जनवरी 1924 ई. पृ0 336
44. मतवाले का मत -सं. कर्मेन्दु शिशिर , पृ0 99

# उपसंहार

"मतवाला" का प्रकाशन हिन्दी-पत्रकारिता के जगत में महत्वपूर्ण घटना थी । इसके तेवर नये और तीखे थे । व्यंग्य और विनोद इसकी मूल स्वर था, पर यह गंभीर राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक प्रश्नों पर बेधड़क टिप्पणी करता था । मतवाला मण्डल तथाकथित शालीनता में सत्य को छिपाता नहीं था और न ही मर्यादा के बहाने पाखण्ड को ढांकता था । इसकी सरफगोई , अक्खड़ता, फक्कड़पन भारतेन्दु युग की परम्परा से मेल खाती है । जिन परिस्थितियों में मतवाला का प्रकाशन आरम्भ हुआ, उसमें महात्मागांधी एक नये प्रकार के विद्रोह और संघर्ष विधि लेकर आये थे । जिसका परीक्षण वे अफ्रीका में कर चुके थे । सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन नये थे ।

सन् 1920-21 के सत्याग्रह में लाखों-लाखों लोगों ने भाग लिया । इतिहास में ऐसा जन-आंदोलन नहीं हुआ था जिसमें इतनी बड़ी संख्या में जनता के सब तबकों की शिरकत हुई हो । किसान, मजदूर, मध्यवर्गीय, बुद्धिजीवी सब इसमें शामिल थे । बिना प्रतिकार किये अत्याचारी शासन की लाठी, गोली सह लेना और स्वेच्छा से जेल चले जाना सचमुच वीरता थी । इस आंदोलन ने देश को जगा दिया था । बिजली फैल गई थी, जनता में विद्रोह भावना भर गई थी, भय चला गया था । उत्सर्ग की प्रेरणा मिली थी, अपनी शक्ति पर भरोसा हुआ था, इस आंदोलन का विकट प्रभाव था । इस आंदोलन ने देश के युवाओं में विद्रोह की आग जला दी । 1917 में लेनिन के नेतृत्व में रूस में किसान, मजदूरों ने क्रांति की थी । इस क्रांति का बहुत असर भारतीय मानस पर पड़ा । दुनिया भर के लिए यह क्रांति अत्यंत उत्प्रेरक घटना थी । श्रमिकों के हाथों में राजसत्ता आ गई थी । दुनियाभर के शोषितों में आशा जगी थी, युवकों में नई जागृति आई थी ।

तीव्र परिवर्तन के इस दौर में बुद्धिजीवी वर्ग की क्या जिम्मेदारी होती है । संक्रमण काल में उसकी क्या भूमिका होती है, उसके नैतिक कर्तव्य क्या होते हैं ? इन्हीं जिम्मेदारियों के निर्वाह हेतु "मतवाला अपने लेखक मण्डल के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ होकर उपस्थित हुआ । उसने घोषणा की थी कि "राष्ट्र, जाति सम्प्रदाय, भाषा, धर्म, समाज, शासन प्रणाली, साहित्य और व्यापार आदि समस्त विषयों का निरीक्षण एवं संरक्षण ही मेरी योजना का अभिसंधान है।" वास्तव में मतवाला के लिए तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों में इन विविध विषयों का निरीक्षण एवं संरक्षण बहु आयामी तथा दुरूह कार्य था लेकिन मतवाला अपने स्वभाव व लक्ष्य के अनुसार अपने कर्तव्यों का बखूबी निर्वाह किया । "मतवाला" सामन्ती व्यवस्था में हो रहे स्त्रियों और अछूतों के शोषण के खिलाफ था और नारी मुक्ति आंदोलन के साथ-साथ नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा नारी शिक्षा का समर्थक था । स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन करते हुए ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती दी । मतवाला अछूतों का समर्थक था तथा अछूत आंदोलन व मंदिर प्रवेश पर बल देता था । क्योंकि हिन्दू जाति की एकता, हिन्दुओं की घटती जनसंख्या में वृद्धि या फिर मुसलमानों का मुँहतोड़ जबाब देने के लिए तथा देश की स्वाधीनता के लिए आवश्यक मानता था । उसे भय था कि हिन्दू जाति इसी तरह विखंडित रही तो मुसलमान हिन्दुओं पर हावी हो जायेंगे इस प्रक्रिया में वह जातिवादी संकीर्णता को समाप्त करने के लिए वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह तथा सती प्रथा का विरोधी और विधवा विवाह का समर्थक था । कांग्रेस में फूट तथा स्वराजियों में मतभेद स्वाधीनता के लिए बाधक मानता था। राजनीतिक स्वार्थ के तहत किसी तरह की हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल विरोधी था । मतवाला तत्कालीन परिस्थितियों को उसकी सम्पूर्णता कुरूपता, और सुन्दरता के साथ उभारता था चाहे वह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जो भी रही हो ।

भारत में हिन्दू-मुसलमान को एक साथ रहते हुए हजारों साल गुजर गये । साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा का जन्म तब नहीं हुआ, जब मुसलमान इस देश में आये । जबकि 636 ई. में अरब आक्रमण व 712 ई. में मुहम्मद बीन कासिम का आक्रमण तथा 986-87 ई. में तुर्क आक्रमण और 1526 ई. में मुगलों के आक्रमण के साथ ही मुसलमान हिन्दुस्तान में आये और रहने लगे । जब वह एक दूसरे से इतने घुल-मिल गए कि दोनों के सांसारिक । सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक। हितों में भेद नहीं रह गया तब साम्प्रदायिकता जैसी विचारधारा का जन्म होता है, यानी जब लोग पढ़ लिखकर सामाजिक, राजनीति रूप से जागरूक हो गए और अपने हितों की पहचान करने लगे तब इस विचारधारा का जन्म हुआ था यूँ कहें कि साम्प्रदायिकता 20वीं सदी की आधुनिक राजनीति के उदय का परिणाम है । हमारे समाज की विडम्बना है कि पढ़-लिखकर मनुष्य अपने पाशविक गुणों को भूल जाता है परन्तु हिन्दुस्तान में पढ़-लिखकर शिक्षित होकर लोग पशु बन जाते हैं । एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं । साम्प्रदायिकता इसी अर्थ में पढ़े-लिखे लोगों की मानसिकता की उपज है। क्योंकि आम आदमी के लिए हिन्दू-मुस्लिम में भेद कर पाना मुश्किल था ।

एक धर्म के मानने वालों के सांसारिक (सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक) हित एक होते हैं, जबकि (एक ही धर्म में उच्चवर्गीय हिन्दू और निम्न वर्गीय हिन्दू के सांसारिक हित असमान होते हैं।

अतः साम्प्रदायिकता का सैद्धान्तिक और वैचारिक आधार कुछ था ही नहीं, उसका तर्क ही गलत था । चूँकि सवाल गलत है तो जबाब निश्चित रूप से गलत होगा। उसके बीच में गलत व्याख्या, इतिहास का गलत प्रयोग, धार्मिक संकीर्णता, जाति व्यवस्था तथा जीवन स्तर में विषमता और ब्रिटिश शासन की नीति ही काम कर रही थी । जिसका शिकार निरीह, निर्दोष जनता हुई ।

राष्ट्रीय आंदोलन की शुरूआत गणेश पूजा तथा गंगा में डुबकी लगाकर हुई, जो धर्म से प्रेरित थी। दुनिया में कहीं भी किसी भी आंदोलन को चलाने में धर्म का सहारा लेना खतरनाक साबित हुआ है। चूँकि धर्म बहुत नाजुक होता है इसके प्रति जनता का आकर्षण शिघ्र होता है। सम्प्रदायवादी कोई भी बात धर्म का लबादा ओढ़कर कहते थे। स्वाधीनता की तुलना रामराज्य से करना, तथा प्राचीन वैदिक युग में लौटना मुसलमानों के हित में नहीं था। और न ही मुसलमानों को रामराज्य से मिलता, न ही वैदिक संस्कृति, वैदिक पद्धति में जीवन जीना उनके लिए संभव था। काग्रेस भी लगभग उसी राह पर चलने लगी, स्वराज प्राप्ति की आशा उसी से प्रेरित थी। आखिर मुसलमान हिन्दुस्तान को अपना राष्ट्र तथा हिन्दुओं को अपना भाई कैसे मानते!

हिन्दू-महासभा और मुस्लिम लीग मुसलमानों के अलग राष्ट्र पर जोर देने लगीं। निश्चित रूप से यह राजनीति प्रेरित था। 'तबलीग' और 'शुद्धि' एक दूसरे की प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आये जो राजनीति प्रेरित ही थे। 1920 के दशक में ही इसमें सक्रियता आना यह साबित करता है कि यहस समाज में अपना जनाधार तैयार कर रहे थे। । मतवाला शुद्धि को बढ़ावा देने की बात बार-बार करता है। हिन्दुओं को संगठित होने की अपील करता है, मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं को उकसाता है, और अछूतों पिछड़ों को जो सदियों से उपेक्षित थे, उनको भी शुद्ध करके हिन्दू संगठन में शामिल करता है, इस प्रक्रिया में मुसलमानों के प्रति भला बुरा भी कहता है। यह उसकी सोच पर प्रश्न चिह्न लगाता है, उसकी कुटिल मंशा को स्पष्ट करता है। 20वीं सदी में ही हिन्दू राष्ट्र की मांग जोर पकड़ती है। जबकि इसके पूर्व 1884 ई. में बलिया के प्रसिद्ध भाषण में भारतेन्दु हरिश्चन्द ने हिन्दू राष्ट्र का एलान किया कि "हिन्दुस्तान में रहने वाला हर व्यक्ति चाहे जिस जाति या रंग का हो, हिन्दू है.... बंगाली,

मराठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिकी, जैनी, ब्राह्मण, मुसलमान सभी हिन्दू हैं और एक साझा एतिहासिक परियोजना में शामिल हैं " हिन्दुओं के हिन्दू राष्ट्र की मांग 1920 के दशक में तेज गति पकड़ ली थी । मुसलमानों में आगे चलकर 1930 में मुस्लिम लीग द्वारा अलग राष्ट्र की मांग की जाने लगी । जिसे हिन्दू राष्ट्र की मांग के प्रतिक्रिया स्वरूप कहा जा सकता है । आखिर हिन्दुस्तान में रहना है मुसलमानों को तो हिन्दू का छोटा भाई बनकर वरना... छोटा भाई बनकर रहने का आशय मतवाला ने स्पष्ट कर दिया है । मुसलमानों को गुण्डा, आक्रमणकारी, हिन्दू का दमन करने वाला, धार्मिक संकीर्ण व कट्टर, यवन इत्यादि कह कर मतवाला कौन सी समानता और हित एक होने की बात करता है // पत्रकारिता का क्या यही स्वरूप होता है या होना चाहिए । हिन्दुओं को संगठित होना, मुसलमानों का मुँहतोड़ जबाब देना, शुद्धि को बढ़ावा तथा आवश्यक समझना हिन्दूवादी पुट को ही पुष्ट करता है । मुसलमानों में तबलीग और तंजीम पर बहस करने और उस पर राय प्रकट करने से मतवाला कतराता है । इस बारे में मतवाला अपनी कोई राय प्रकट नहीं करना चाहता ।

सच तो यह है कि मतवाला सही अर्थों में जिस लक्ष्य को लेकर चला था उसी से भटक गया और साम्प्रदायिक समस्या को उठाकर उसका समाधान प्रस्तुत नहीं किया बल्कि खुद उसी धार में बह चला, यानि साम्प्रदायिक हो गया । 1920 का दशक साम्प्रदायिक दंगों का दशक रहा, वैसे दंगे इतनी कम अवधि में कभी नहीं हुए , क्या इस प्रक्रिया में पत्रकारिता की भूमिका को नकार दें। हाल ही में सूरत प्लेग की घटना तथा रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद के संदर्भ में पत्रकारिता की भूमिका जग जाहिर है । बदलते समय और परिवेश में पत्रकारिता की बहुत सारे नैतिक कर्तव्य एवम् जिम्मदारियाँ होती हैं । वह उसका निर्वाह कितना कर पाती है । इस पर ध्यान देने की जरूरत है। साम्प्रदायिकता जैसी समस्या को पत्रकारिता से बढ़ावा ही मिला । उसे कम करने में कहीं भी उसका योगदान नहीं दिखाई पड़ता । मतवाला भी बहुत कुछ ऐसा ही है।

....0.....

## सन्दर्भ ग्रंथों की सूची


01. आधार सामग्री - "मतवाला" वर्ष 1923-1929 तक

02. "मतवाले का मत"- सम्पादक कर्मेन्दु शिशिर

03. "साक्षात्कार" पत्रिका दिसम्बर 1986 "मतवाला" विशेषांक
"मतवाला" और उसकी भूमिका - हरिशंकर परसाई

04. "आलोचना" पत्रिका अप्रैल-जून 1970
" साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक दंगे "- प्रभात कुमार त्रिपाठी

05. "साम्प्रदायिकता के स्त्रोत " - सम्पादक अभय कुमार दूबे

06. "आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता" - प्रो. विपिन चन्द्र

07. "आधुनिक भारत " - सुमित सरकार

08. "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष " - प्रो. विपिन चन्द्र

09. "प्रेमचंद के कथा साहित्य में हिन्दू-मुसलिम सम्बंध"- ओम प्रकाश सिंह


.....0.....